सन्तराम वत्स्य

पंजाब की प्रेमकथाएं

लेखक
सन्तराम वत्स्य

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
९६–दरियागंज, दिल्ली

प्रथम संस्करण
१९६०

चित्रकार
के० सी० आर्यन

मूल्य
दो रुपये

मुद्रक
भारत मुद्रणालय
दिल्ली

दो शब्द

'पंजाब की प्रेमकथाएं' में पंजाब की चार अत्यन्त लोकप्रिय प्रेमकथाएं सरल-सुबोध भाषा में लिखी गई हैं। पंजाब के विभिन्न कवियों ने इन कथाओं को लेकर काव्य लिखे हैं और अपने-अपने ढंग से घटनाओं में कुछ न कुछ परिवर्तन भी किया है। मैंने उनमें से अधिक प्रचलित घटनाक्रम को ही अपनाया है।

ये प्रेमकथाएं पंजाब के जन-मन में कितनी गहरी पैठ चुकी हैं, शायद इस बात का सही अनुमान दूसरे प्रदेशों के लोग नहीं लगा सकते। इन चारों में भी 'हीर-रांझा' की प्रेमकथा के साथ उसके सबसे अधिक लोकप्रिय कवि वारशशाह का नाम इस प्रकार जुड़ गया है कि पाठक 'हीर-वारशशाह' के नाम से ही उसे पहचानते हैं। उत्तर-प्रदेश में 'आल्हा' भी इतना लोकप्रिय नहीं है, जितनी 'हीर'। ये कथाएं ऐतिहासिक आधार लिए हुए हैं। ये सारी की सारी कथाएं दुखान्त हैं। प्रेमी एक-दूसरे के लिए मर-मिटते हैं। उन्हें अपनों और दूसरों से जूझना पड़ता है और जूझते-जूझते ही उनका अन्त हो जाता है। मिलन होता भी है तो चार दिन की चाँदनी।

इन कथाओं में एक विशेषता यह है कि ये विशुद्ध प्रेम-

कथाएं हैं। इनके पीछे और कोई बात नहीं है, जैसा कि कई अन्य प्रेमाख्यानों में है। पंजाबी काव्य में लिखी इन कथाओं में जो रस है, उसका पूर्ण आस्वाद तो आप मूल-रूप में ही ले सकते हैं पर यदि इन कथाओं को पढ़कर पाठकों को मूल पंजाबी काव्य पढ़ने की प्रेरणा मिले तो मेरे लिए पर्याप्त होगा, साथ ही ये कथाएंविशेष रूप से उन लोगों के लिए लिखी गई हैं, जो पंजाबी न जानने के कारण, कभी भी इन्हें पढ़ने का अवसर न पाते।

—लेखक

क्रम

हीर-रांझा	...	९
सस्सी-पुन्नूं	...	३१
सोहनी-महिवाल	...	५५
मिर्ज़ा-साहिबां	...	८३

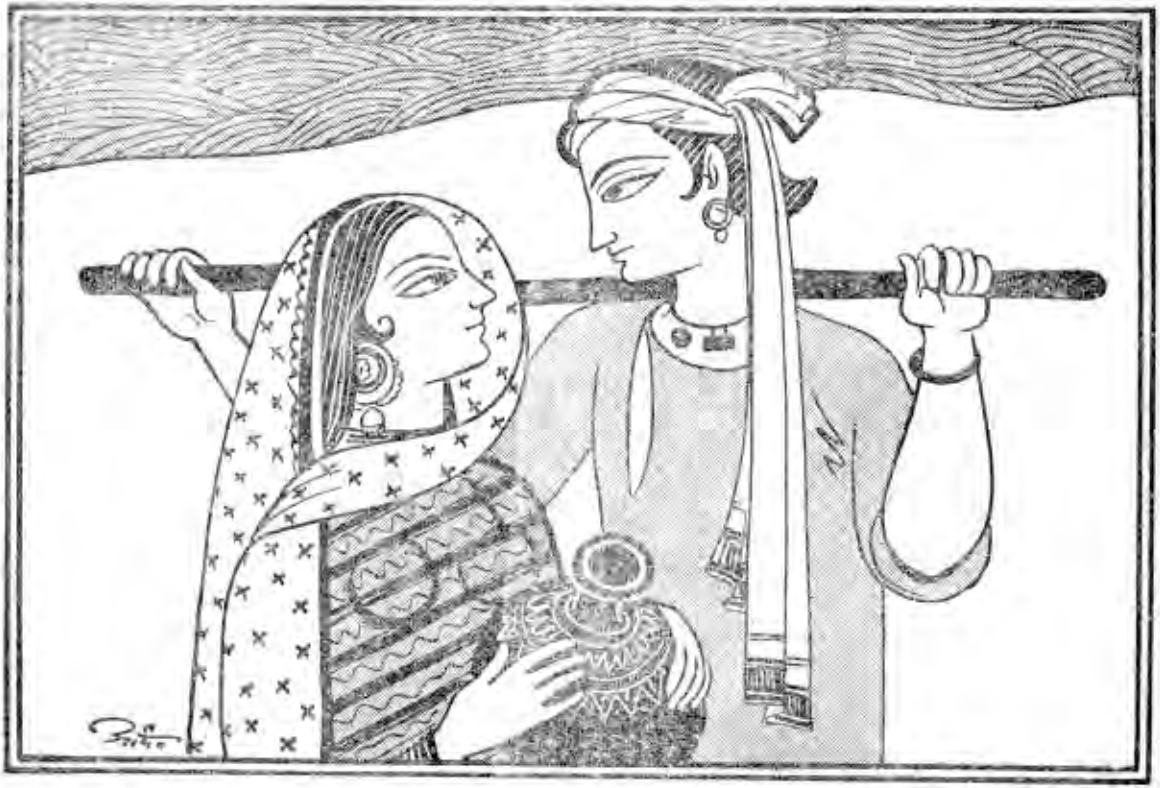

हीर-रांझा

झंग[1] पंजाब का एक जिला है। यह एक पुराना नगर है। झंग नगर से कुछ दूरी पर तख्त हज़ारा नामक गांव था। किसी समय यह अच्छा-खासा कसबा था। चौधरी मौजू इस कसबे का मुखिया था। यह रांझा कबीले का सरदार समझा जाता था। मौजू चौधरी के आठ बेटे और दो बेटियां थीं। खाता-पीता भरा-पूरा परिवार था। पैसा भी था, और इज़्ज़त भी। सबसे छोटा बच्चा मां-बाप को बहुत प्यार होता है। मौजू भी अपने छोटे बेटे धीदो को बहुत चाहता था। यह धीदो ही आगे चलकर रांझा नाम से लोक-प्रसिद्ध हुआ। प्रेम-कथाओं में 'हीर-रांझा' की कथा बेजोड़ है। उसके सच्चे प्रेम की कहानी पंजाब की अमर प्रेम-कहानी है और पंजाबियों के मन पर उसकी गहरी छाप है। वे उसे गाते नहीं अघाते।

मौजू का परिवार खेती-बाड़ी का काम करता था। बेटे हल जोतते, फसल की रखवाली करते और ढोर-डंगरों को चराते। अपने-अपने काम में सभी जुटे रहते। किसीको

१. अब यह जिला पाकिस्तान में है

दम भरने की फुर्सत न मिलती। मगर रांझे की बात ही निराली थी। मां-बाप का लाडला बेटा जो ठहरा ! भाइयों में सबसे छोटा, भाभियों का प्यारा देवर। उसे घर-बाहर के काम-काज से कोई मतलब नहीं था। वह निराला अलबेला नौजवान था। ओठों से बंसरी लगाए मीठे प्रेम-तराने गाता वह खेतों, चरागाहों, और आस पास के जंगलों में घूमता फिरता।

ज़िन्दगी मज़े में बीत रही थी—बे-फिकर, मस्त, अलबेली ज़िन्दगी। पर बाप के मरते ही रांझे की दुनिया ने भी करवट बदली। भाइयों ने शायद ठीक ही सोचा कि हम तो दिन-रात मर-खपकर कमाएं और यह निठल्ला मौज उड़ाए। यह कहां का इन्साफ है? कुछ दिन तो यों ही गुज़र गए। आखिर भाइयों के जुदा-जुदा होने की नौबत आ गई। गांव के बड़े-बूढ़े लोग घर-जायदाद का बंटवारा करने के लिए बुलाए गए। घर गृहस्थी का सामान व ज़मीन सभी चीज़ें बांट ली गईं। अच्छी उपजाऊ ज़मीन तो बड़े भाइयों ने अपने-अपने हिस्से में ले ली और रेतीली और बंजर ज़मीन रांझे को दे दी।

रांझे को भाइयों की इस चाल का कुछ पता न लगा। वह भोला-भाला बेचारा इन बातों को क्या जाने ! पंचों ने जो कहा, मान लिया। उसने आज तक खेती-बाड़ी के

काम में कभी हाथ तक नहीं लगाया था। उसे तो उपजाऊ और ऊसर ज़मीन तक की पहचान नहीं थी। पर अब खेती करने के सिवा और कोई चारा भी नहीं था। उस बंजर ज़मीन की जुताई-निराई में उसने मेहनत तो खूब की पर सब बेकार गई। उस ज़मीन ने फसल पैदा करने से इन्कार कर दिया। गांव के लोग उस ज़मीन पर रांझे को खून-पसीना एक करते देख उसकी मूर्खता पर खूब हँसते। रांझा जिस ओर भी जाता, लोग उसे कनखियों से देखकर मुस्कराते और कानाफूसी करते। कुछ कहते—बाप के मरते ही आटे-दाल का भाव मालूम हो गया! कुछ कहते—कमाकर खाना बहुत मुश्किल होता है। कोई कहता—साहबजादे अब सब राग-रंग भूल गए। कुछ भले लोग यह भी कहते—बेचारे को अपने ही सगे भाइयों ने धोखा दिया। उसके हमजोली उसे चिढ़ाने में सबसे आगे रहते। पर उसे इन सबकी परवाह नहीं थी, कोई मलाल नहीं था। पर एक बात उसके दिल को बुरी तरह कचोटती रहती थी। भाभियों के ताने उससे सहे न जाते। वह तिलमिला उठता पर कुछ कर न पाता, कह न पाता। आखिर उसने फैसला किया कि वह उस जगह को छोड़ दे—किसी ऐसी जगह चला जाय जहां कोई जान-पहचान का न हो, कोई रोने वाला न सही, पर मुझपर हंसने वाला भी

कोई न हो। एक दिन वह बाप-दादा की इस धरती को छोड़कर अनजाने स्थान के लिए चल पड़ा। भाइयों ने रोकना चाहा पर उसने किसीकी एक न सुनी। वह सुबह तड़के घर से निकल पड़ा और नाक की सीध पर सीधा चल पड़ा।

अगले दिन वह चिनाब नदी के किनारे पहुंच गया। सामने नज़र दौड़ाई तो बहुत दूर झंग शहर की मस्जिदों के मीनार और मन्दिरों के कलस धुंधले से दिखाई दे रहे थे। राहियों को उस पार ले जाने के लिए एक किश्ती तैयार खड़ी थी। रांझा भी पार जाने के लिए किश्ती पर सवार होने लगा पर मल्लाह को देने के लिए उसके पास पैसे नहीं थे। बिना पैसों के मल्लाह भी बैठाने को तैयार नहीं था। रांझे ने कहा—"खैर कोई बात नहीं, मैं तैरकर ही पार चला जाऊंगा।"

यह सुनकर किश्ती में बैठे लोगों को उसपर दया आई। एक ने मल्लाह से कहा—अरे भाई, बेचारा कोई मुसीबत का मारा है। अगर तुम इसे किश्ती में बिठा लो तो तुम्हारा क्या हर्ज है।

मल्लाह के मन में भी दया आई, उसने रांझे को बिठा लिया। किश्ती किनारा छोड़कर धार को चीरने लगी। मल्लाह जोर-जोर से चप्पू चलाने लगा। चप्पू की छप-

छप आवाज और उस सुन्दर दृश्य ने रांझे के मन में एक हूक-सी पैदा कर दी। उसने सुख के दिनों की साथिन बंसरी निकाली और एक सुरीली तान छेड़ दी। आज उसने कई दिनों बाद बंसुरी ओठों से लगाई थी। वह अपने मन के सारे बोझ को सांसों द्वारा बंसी में उंडेल रहा था। फिर क्या था। सारी किश्ती में सन्नाटा-सा छा गया। सभी सांस बांधकर बंसरी की तान सुनने लगे। बंसरी के स्वरों में कुछ ऐसी करुणा, कुछ ऐसी उदासी, कुछ ऐसा दर्द था कि अनजाने ही सब के मन उदास-से हो गए, खोए-खोए से सभी दिखाई देने लगे।

किश्ती में एक ओर बड़ा सुन्दर पलंग बिछा हुआ था। रांझे ने मल्लाह से पूछा—यह पलंग किसका है? मल्लाह बोला—मेहर चूचक की बेटी हीर का। यह किश्ती भी तो उसीकी है। कभी-कभी वह इस किश्ती पर बैठकर सैर किया करती है।

रांझा खड़े-खड़े थक-सा गया था। राहगीरों से किश्ती खचाखच भरी हुई थी और बैठने के लिए कोई जगह नहीं थी। रांझा समझ रहा था कि मल्लाह का मन मुझपर पसीजा हुआ है। उसने मल्लाह से कहा—मैं बहुत थका हुआ हूं। कहो तो इस पलंग पर बैठ जाऊं।

मल्लाह ने सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी और रांझा

आराम से बैठा क्या, लेट गया।

थोड़ी देर में किश्ती किनारे जा लगी। एक-एक कर के सभी उतर गए और अपनी-अपनी राह चले गए।

थका-हारा रांझा पलंग पर जो लेटा तो उसे नींद आ गई।

२

झंग शहर में स्याल कबीले के लोग पुराने समय से रहते आए हैं। मेहर चूचक स्याल कबीले का मुखिया और झंग का हाकिम था। उसकी लड़की का नाम हीर था। मल्लाह ने जब से रांझे को बताया कि यह पलंग हीर का है, तभी से उसके दिल में कुछ चुभन-सी होने लगी थी। उसे लगा, यह नाम पहले भी कभी सुना है। सोचने पर याद आया कि एक शाम को वह शीशम वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था कि उसकी भाभियां सिर पर पानी के घड़े रखे उस ओर से निकलीं। अपने इस अलबेले देवर को देखा तो रुक गईं। उनमें से एक रांझे को सुनाती हुई दूसरी से बोली—हमारे देवर का ब्याह कब होगा?

दूसरी बोली—अरी तू रांझे को क्या समझती है! यह तो मेहर चूचक की बेटी हीर को ब्याह कर लाएगा।

उसका यह कहना था कि सब खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

पर रांझे के दिल में यह ताना कांटे की तरह चुभ गया। पर वह रहा चुप ही। उसने मन ही मन निश्चय किया कि या तो मैं सचमुच हीर को ब्याह लाऊंगा या फिर उमर भर कुंआरा ही रहूंगा। उसी दिन से कल्पना की 'हीर' उसके मन के एक अनजाने कोने में दुबकी बैठी थी पर आज ज्यों ही उसने 'हीर' का नाम फिर सुना तो जैसे पुराना घाव हरा हो गया हो। कल्पना की हीर को जैसे उसके पलंग पर सोकर ही उसने पा लिया हो। जैसे हीर उसकी हो चुकी हो।

हल्की-सी नींद में वह सोया पड़ा था। उसके कान में पास ही ज़ोर-ज़ोर से बातें करने की आवाज़ पड़ी। उसकी आंख खुल गई। वह क्षण भर तो यही सोचता रहा कि मैं कहां हूं। यहां कैसे आ गया, सपना देख रहा हूं या जागता हूं। फिर जब उसकी पूरी चेतना लौट आई तो क्या देखता है कि आठ-दस जवान-जवान लड़कियों से घिरी हुई एक सुन्दर लड़की यों खड़ी है जैसे तारों से घिरा चन्द्र हो। चम्पई रंग, हरिणी की सी चंचल मतवाली बड़ी-बड़ी आंखें, पतले-पतले लाल ओठ गुस्से से यों कांप रहे थे जैसे हवा में गुलाब की दो पत्तियां कांप रही हों। एड़ी को चूमते घने-काले बाल, चौड़ा माथा, माथे पर बल पड़े हुए। गुस्से की लाली आंखों में भी उभर आई थी।

वह दांत पीस रही थी और अपने ओठ काट रही थी। रांझा आंखें मलते हुए उसे देखता रहा और उसे देख-देखकर आंखें मलता रहा। जैसे कोई बात थी जो उसकी समझ में नहीं आ रही थी।

यह गुस्सा भी उसकी सुन्दरता को बढ़ा ही रहा था जैसे नकली गुस्सा हो।

रांझे ने नज़र उठाकर उस रूपसुन्दरी की ओर देखा। वह तो पहले ही उसकी ओर देख रही थी। दोनों की आंखें चार हुईं। इस समय रांझा बड़ा मनहर और बलवन्त जवान मालूम होता था। आंखों में लाल डोर, बाजू की मछलियां उभरी हुईं, चौड़ा सीना। उसका अलबेलापन उसके चेहरे पर साफ दिखाई दे रहा था।

रांझे ने कहा—मैं एक दुखियारा राहगीर हूँ। चलते-चलते बहुत थक गया था। पल भर के लिए बैठ गया था पर क्या बताऊँ, आंख लग गई। मुझसे गलती हुई, बड़ी गलती हुई।

यह सुनते ही हीर का गुस्सा जैसे काफूर हो गया। हीर पूछ बैठी—कहां से आ रहे हो? क्या नाम है तुम्हारा?

—"तख्त हजारे से आ रहा हूं।" रांझे ने उत्तर दिया।

पर इस छोटे-से उत्तर से हीर का जैसे मन नहीं भरा।

वह इस अलबेले नौजवान के बारे में बहुत कुछ जानना चाहती थी।

उसने बहाने से सहेलियों को टाल दिया। वे वहां से हट गईं। हीर रांझे के पास आ बैठी। इससे पहले वह रांझे को पहली नज़रों में ही अपने दिल में बिठा चुकी थी। क्या बताएँ, यह दिलों की दुनियां भी अजीब होती है। रांझे ने उसे अपनी रामकहानी कह सुनाई। और भी इधर-उधर की दो-चार बातें हुईं।

आखिर हीर ने पूछा—"अब तुम कहां जा रहे हो?"

"यह तो मुझे भी नहीं मालूम। पर जहां भी किस्मत ले जाए, चला जाऊँगा।"

"तो तुम यहीं रहो। मैं अपने पिताजी से कहकर तुम्हें कोई काम दिलवा दूँगी।" हीर ने जाते-जाते रुककर कहा। चलते-चलते वह मुड़-मुड़कर पीछे देखती, फिर चारों ओर देखती कि कोई देख तो नहीं रहा है। फिर यों पीछे देखती जैसे कोई खास बात न हो—वह यों ही पीछे देख रही हो।

मेहर चूचक के यहां बहुत-सी गाएँ-भैंसें थीं। उनकी रखवाली के लिए उसे एक चरवाहे की ज़रूरत भी थी। उसने रांझे को डंगरों के चराने के काम पर नौकर रख लिया।

चनाब के तट पर चरागाह थी। रांझा वहां भैंसें चराता और मजे में बंसरी बजाता।

हीर के घूमने-फिरने की मनपसन्द जगह भी यही थी। प्राय: दिन में एक-दो बार उनकी मुलाकात हो ही जाती। सहेलियां साथ होतीं तो दो-एक बात करके हीर चली जाती। किन्तु जब अकेली होती तो खूब घुल-मिल-कर घंटों बातें होती रहतीं, मानो ये बातें कभी खतम ही न होंगी।

धीरे-धीरे यहां तक नौबत पहुँच गई कि एक-दूसरे को देखे बिना उन्हें चैन नहीं आता। मन मिलने के लिए छट-पटाता। दोनों के दिलों में एक जैसी आग लगी हुई थी—प्रेम की आग। सच कहते हैं, प्रेम छिपाए नहीं छिपता। कुछ दिनों में लोग दोनों के विषय में तरह-तरह की बातें करने लगे। औरतें हीर को देखकर कनखियों से एक-दूसरी को देखने लगतीं। जहां दो जने मिल बैठते, यह चर्चा होने लगती। बात हीर की मां तक पहुँची और उसने हीर के बाप को बताया पर उन्हें तो अपनी बेटी पर बड़ा भरोसा था। वे इधर-उधर की बातों पर क्यों विश्वास करते!

मेहर चूचक का एक भाई था। वह था तो एक टांग से लँगड़ा लेकिन था पूरा शरारती। उसे रात-दिन इधर की उधर और उधर की इधर करने के सिवा कोई

काम ही नहीं था। उसने एक-दो बार हीर और रांझे को घुल-घुलकर जो बातें करते देखा तो भाई से जाकर चुगली खाई।

हीर का पिता इधर-उधर के लोगों से पहले भी सुन चुका था, पर उसने सुना अनसुना कर दिया था। परन्तु जब भाई ने बताया तो उस बात को उतनी आसानी से टाला नहीं जा सकता था। उसने रांझे को नौकरी से अलग कर दिया और मन में सोचा कि 'न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी'।

रांझे को निकाल तो दिया लेकिन उसके जाते ही भैंसें ऐसी बिगड़ीं कि किसीके सँभाले न सँभलती थीं। वे रांझे से कुछ ऐसी हिलमिल गई थीं कि उसका जाना उन्हें बहुत बुरा लगा। और हीर की तो यह हालत थी कि जब से रांझा गया था, उसे काठ मार गया था। न किसी से बोलती-चालती और न खाने-पीने में उसका मन लगता, पहनने-ओढ़ने की भी सुध नहीं थी।

एक दिन उसने अपने दिल की बात मां से कह ही दी। "मां ! किसी तरह रांझे को बुला लो नहीं तो मैं नहीं बचूंगी।" जमीन में आँखें गड़ाए धीमी-सी आवाज में हीर ने कहा।

मां को बेटी के हाल पर तरस आया। उसकी ममता

कुछ करने के लिए तैयार हो गई। उसने एक दिन मौका पाकर मेहर चूचक से कहा, "तुम्हारे बैरी यों ही मेरी बेटी को बदनाम करने पर तुले हुए हैं। और तुम हो कि उनकी बातों को सच मानकर रांझे जैसे भले नौकर को घर से निकाल दिया। मैं तो कहती हूँ उसे फिर से नौकरी पर रख लो। ऐसा अच्छा नौकर ढूंढे भी नहीं मिलेगा। देखते नहीं, थोड़े ही दिनों में भैंसों का क्या हाल हो गया है। कैसी बेकाबू हो रही हैं।"

मेहर चूचक उसे निकालकर पहले ही पछता रहा था। हीर की मां का यह कहना था कि वह रांझे को बुलाने के लिए राजी हो गया। उसने पूछा—"वह आजकल है कहां?"

हीर की मां ने कहा—"सुना तो है कि यहीं कहीं शहर में है। अगर तुम कहो तो कुछ अता-पता मालूम करूं।"

मेहर चूचक ने बुलाने की स्वीकृति दे दी।

रांझा फिर अपनी पुरानी नौकरी पर वापस आ गया और पहले ही की तरह भैंसें चराने लगा। हीर और रांझा मिलते-जुलते तो अब भी थे, पर पहले की तरह नहीं। चोरी-चुपके दुनिया की नजरें बचाकर कभी एक-दो बातें ही कर पाते। पर हीर का लँगड़ा चाचा बराबर उनपर नजर रखता और भाई के कान भरता रहता।

मेहर चूचक अपनी भाई की लगाई-बुझाई की आदत

से भली प्रकार परिचित था, इसलिए उसके कहने पर ज़रा भी भरोसा नहीं करता था। पर एक दिन मेहर चूचक ने खुद ही दोनों को बातें करते देख लिया। अब और किसी सबूत की क्या जरूरत थी ! परिणाम यह हुआ कि रांझे को नौकरी से निकाल दिया गया और हीर के ब्याहने की तैयारियां होने लगीं।

३

झंग से कुछ ही दूर रंगपुर एक गांव है। यहां खेड़ा कबीले के लोग बसते थे। इस गाँव का मुखिया अज्जू चौधरी था। उसके बेटे का नाम था सैदा। बहुत पहले अज्जू चौधरी ने मेहर चूचक से उसकी बेटी अपने बेटे के लिए माँगी थी। पर तब मेहर चूचक ने यह कहकर टाल दिया था कि हीर की अभी उमर ही कितनी है। बड़ी हो ले, फिर देखेंगे। अब जो उसे हीर-रांझे के प्रेम का पता चला तो उसने खुद ही रिश्ते की बातचीत चलाई। अज्जू जानता था कि हीर जैसी बहू चिराग़ लेकर ढूँढने पर भी नहीं मिलेगी। उसने कहला भेजा कि हमें रिश्ता मंजूर है।

हीर को जब पता लगा कि सैदा खेड़े से मेरा ब्याह होना तय हो गया है तो उसने माँ से साफ-साफ कह दिया कि मैं रांझे के सिवा और किसीसे ब्याह नहीं करूँगी।

पर इस कहने का कुछ भी असर नहीं हुआ। वह कर ही क्या सकती थी! उसपर कड़ी निगरानी रखी जा रही थी। बेचारी रो-पीटकर रह गई। ब्याह का दिन तय होगया। लड़के वाले बड़ी धूम-धाम से ब्याहने आए और रीति-रिवाज के अनुसार ब्याह होने लगा।

पर जब काज़ी निकाह पढ़ने लगा तो नियम के अनुसार उसने हीर से पूछा कि क्या तुम्हें सैदा खान खेड़े से ब्याह करना स्वीकार है? तो हीर ने साफ इनकार कर दिया। पर इस बात की भी किसीने परवाह नहीं की और निकाह पढ़ दिया गया। रोती-चिल्लाती हीर को डोली में डालकर लड़के वाले अपने घर ले गए।

रांझा मजबूर था। वह इस ब्याह को रोक नहीं सकता था। कैसे रोकता! यही हालत हीर की थी। पर वे एक-दूसरे के लिए उसी तरह छटपटा रहे थे, जैसे पानी के लिए मछली छटपटाती है। रांझा छाया की तरह हीर की डोली के पीछे-पीछे कुछ दूरी पर चल रहा था।

डोली के पीछे-पीछे वह भी रंगपुर पहुँच गया। पर दोनों प्रेमी एक-दूसरे को देख तक न सके। यहाँ भी हीर पर कड़ी नज़र रखी जा रही थी। मिल सकने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। फिर भी चोरी-छिपे जैसे-तैसे एक-दूसरे तक सन्देश बराबर पहुँचते रहते थे।

प्रेमी जब एक-दूसरे को चाहकर भी नहीं पा सकते तब उनके मन पर गहरी निराशा छा जाती है और वे विराग की ओर झुकते हैं। यही हाल रांझे का था। उसे अब हीर को पा लेने की कोई आशा नहीं थी। और हीर के बिना यह जीवन वीराने की तरह बेकार लगता था। उसने दो दिलों को दूर रखने वाली दुनियां को छोड़ देने का विचार किया।

रंगपुर गाँव से कुछ दूर एक छोटा-सा टीला था जिसे जोगियों का टीला कहते थे। वहाँ एक जोगी रहते थे। नाम था बालानाथ। बालानाथ कोई ऐसे-वैसे जोगी नहीं थे। वे पहुँचे हुए सन्त थे। लोगों का कहना था कि उन्हें जोग की सारी सिद्धियाँ हासिल थीं। वे जो चाहते, कर सकते थे। उनका नाम दूर-दूर तक फैल चुका था और दर्शन करने वालों की भीड़ उनके आसपास सदा लगी रहती थी। उनके चेलों की गिनती भी कुछ कम नहीं थी। रांझा भी जोगी बनने के लिए उनके पास पहुँचा।

जोगी बालानाथ किसी ऐरे-गैरे को अपना चेला नहीं बनाते थे। बड़े कठिन नियम उन्होंने बना रखे थे। चेला बनने से पहले इन नियमों का पालन करना पड़ता था। कम खाना, कम सोना, कम बोलना, कड़ी मेहनत करना। काम, क्रोध और लोभ को पास न फटकने देना। ये और

इसी तरह की और भी कितनी ही शर्तें थीं। पर रांझा तो प्रेम की आग में पहले ही पूरी तरह तप चुका था ; कुन्दन बन गया था। जोगी बालानाथ एक नजर में यह सब कुछ ताड़ गए। जोग मार्ग के लिए जिन-जिन कठिनाइयों से होकर गुज़रना पड़ता है, रांझा पहले ही उनसे गुज़र चुका है। इसलिए सब शर्तें उसके लिए ढीली कर दी गईं और वह जोगी बालानाथ का चेला बन गया।

रांझे ने तन में भभूत रमाई और जोगिये कपड़े पहनकर बाकायदा जोगी बन गया। गुरु ने जोग-मंत्र दिया और रांझा अपना डण्ड-कमण्डल उठाकर रंगपुर गाँव की ओर चल दिया। रंगपुर गाँव से बाहर एक छोटा-सा बाग था। गाँव के लोग इसे कालाबाग कह कर पुकारते थे। रांझे ने इसी बाग में डेरा डाल दिया। एक छोटी-सी कुटिया बना ली और धूनी रमाकर बैठ गया।

दूसरे दिन रांझा भिक्षा-पात्र लेकर निकला और घूमता फिरता अज्जू चौधरी के दरवाज़े पर जा पहुँचा। दरवाजे के पास खड़े होकर उसने 'अलख निरंजन' की पुकार लगाई।

हीर की ननद सेहती बड़ी चंचल और तेज़ तर्रार लड़की थी। इस उठती जवानी के नौजवान जोगी को देखकर उसे कुछ सन्देह हुआ। उसने जोगी से ऐसे-ऐसी बातें कहीं

कि बेचारा जोगी जल-भुनकर रह गया। पर वह भी उसकी बातों का बराबर जवाब देता रहा। इस तरह देर तक दोनों में नोंक-झोंक होती रही। आखिर सेहती ने नौकर से कहा कि मुट्ठी भर आटा देकर इस जोगड़े को चलता करो। पर रांझे ने नौकर के हाथ से भिक्षा लेने से इनकार कर दिया। कहने लगा—तुम अपने हाथ से दोगी तभी भिक्षा लूंगा, नहीं वापस लौट जाऊँगा। बिना भीख लिये जोगी घर से न लौट जाए, यह सोचकर वह स्वयं भीख लेकर आई पर थी गुस्से में भरी हुई। आटा भिक्षा-पात्र में डालते हुए उसका बर्तन ज़ोर से टकरा गया और जोगी का भिक्षा-पात्र इस झटके से गिर पड़ा। राँझे को भीख में अब तक जो कुछ भी मिला था, सब धरती पर बिखर गया और धूल में सन गया। इसपर दोनों में कहा-सुनी हो गई और जोगी जला-भुना खाली हाथ अपनी कुटिया पर वापस आ गया। पर इस तू-तू मैं-मैं से इतना ज़रूर हुआ कि हीर ने राँझे को और राँझे ने हीर को क्षण भर देख लिया।

जोगी चला गया तो सेहती को उसे दुत्कारने का बड़ा पछतावा हुआ। वह सोचने लगी—कई जोगी बहुत पहुँचे हुए होते हैं और क्या मालूम कि यह भी पहुँचा हुआ हो। और अगर मेरी जली-कटी बातों से चिढ़कर उसने मुझे शाप दे दिया तब तो मैं कहीं की

न रहूँगी। वैसे उसके मन में इस बात का पूरा सन्देह था कि जोगी के भेस में यह रांझा ही न हो। हीर के प्रेम का दीवाना बना घूम रहा हो। उसने अपने सन्देह की बात अपनी नई-नवेली भाभी हीर से कही। हीर ने उसे सच-सच बता दिया कि यह तो वही था। सेहती खुद भी किसी की प्रेम-दीवानी थी। उसका प्रेमी एक बलोच था। उसका नाम था मुराद। पर वह डर के मारे उसका नाम ज़बान पर न लाती थी। वह जानती थी कि खेड़ा और बलोचों में रिश्ता नहीं होगा। हीर ने राँझे से अपने प्रेम की बात बताई तो उसके मन में छिपी प्रेम की आग और भी भड़क उठी। उसने अनुभव किया कि वियोग की घड़ियाँ कैसी सताती हैं। उसके मन ने कहा कि अगर मैं इन बिछुड़े प्रेमियों को मिलाने की कोशिश करूँ तो शायद भगवान् कभी मेरे प्रेमी को भी मुझसे मिला दे।

यह सोचकर वह एक दिन बाग में जोगी के पास गई। पर उसकी बातों में वही चंचलता और तीखापन था। राँझे ने उसकी तीखी बातें सुनकर कहा—तुम हीर की ननद हो, इसलिए मैंने तुम्हें शाप नहीं दिया। नहीं तो तुमने तो मुझे सताने में कोई कसर नहीं रक्खी थी। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। सन्तों की सेवा कर ताकि तेरे मन की मुराद मिल जाए।

मुराद का नाम सुनकर सेहती कहने लगी—आप भगवान् से प्रार्थना करें कि मेरा मुराद मुझे मिल जाए।

यह सुनकर जोगी ने आसमान की तरफ हाथ उठाए और भगवान् से प्रार्थना करने लगा कि ऐ बिछुड़ों को मिलाने वाले, इस बेचारी की मनोकामना पूरी कर दो।

दूसरे दिन हीर सहेलियों के साथ सैर करने को निकली, अचानक उसके पाँव में काँटा चुभ गया। उसकी ननद सेहती भी साथ थी। उसने शोर मचा दिया कि भाभी को साँप ने डस लिया। घर के लोग भागे-भागे पहुँचे और उसे उठाकर घर ले गए। अब दवा-दारू करने की बात चली तो सेहती ने कह दिया कि कालेबाग में एक जोगी धूनी रमाए बैठा है। वह साँप काटे का मंत्र जानता है। उसे बुला लिया जाए। हो सकता है कि भाभी ठीक हो जाए। जोगी को तुरन्त बुलाया गया। जिस कमरे में हीर लेटी हुई थी, सेहती उसे वहीं ले गई। बाकी लोगों को वहाँ से हटा दिया। रात का समय था। घर के लोग सो गए। केवल सेहती, रांझा और हीर तीनों जागते रहे। जब सेहती ने देखा कि घर के सभी लोग सो गए हैं तो रांझे से कहने लगी—भाग निकलने का यही समय है। मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ।

ये बातें हो ही रही थीं कि कुछ दूर घंटियों की रुनझुन

सुनाई दी। सेहती ने बाहर निकलकर देखा तो दरवाज़े पर उसका प्रेमी मुराद सांडनी की मुहार पकड़े खड़ा था। फिर क्या था, चुपचाप चारों जने भाग खड़े हुए। कुछ दूर चलने के बाद उनके रास्ते अलग-अलग हो गए। रांझा हीर को लिए अपने गाँव तख्तहज़ारे की ओर चल दिया और मुराद सेहती को सांडनी पर बिठाकर अपने गाँव की ओर।

४

सुबह-सवेरे घर के लोगों की आँख खुली तो वे हीर का हाल जानने के लिए उसके कमरे की ओर लपके। पर कमरा खाली था। वे समझ गए कि रात वाला जोगी उस परी को ले उड़ा है। उधर सेहती को घर में न पाकर उन्होंने सब रास्तों पर उनका पीछा करने के लिए आदमी दौड़ाए। सेहती और मुराद तो साँडनी पर सवार थे, इसलिए उनको पकड़ पाना बहुत कठिन था। पर हीर और रांझा पैदल चल रहे थे। वे रंगपुर से कुछ मील ही गए थे कि पीछा करने वालों ने उन्हें पकड़ लिया। मुकदमा काज़ी के पास पहुंचा। उसने बाकायदा दोनों के बयान लिए। आखिर फैसला हीर के सुसराल वालों के हक में ही हुआ। रांझा अपील के लिए इलाके के बड़े

हाकिम के पास पहुंचा। उसने भी ध्यानपूर्वक दोनों पक्षों के बयान सुने। उसने अपना फैसला यों सुनाया—"हीर का ब्याह सैदा खेड़े से हीर की मर्जी के बगैर हुआ है बल्कि जबरदस्ती हुआ, यों कहना ठीक होगा। इस किस्म का ब्याह इस्लामी कानून के अनुसार गैरकानूनी है। इसलिए हीर को पूरा-पूरा हक हासिल है कि वह जिससे चाहे शादी कर ले।"

अब रांझा हीर को लेकर झंग की तरफ चला। दोनों को विश्वास था कि अब हीर के बाप को हमारा ब्याह करने में कोई एतराज न होगा।

झंग पहुंचने पर हीर के मायके वालों ने दोनों का खूब स्वागत-सत्कार किया। ब्याह की बात-चीत भी तय हो गई। दिन-दिहाड़ा भी तय हो गया। और यह फैसला हुआ कि राँझा अपने गांव से बाकायदा बरात लेकर आए और धूम-धड़ाके से हीर को ब्याह ले जाए।

रांझा अपने गाँव की ओर चल दिया। भाई और भाभियों ने उसके वापस लौट आने पर बड़ी खुशी मनाई। ब्याह की तैयारी होने लगी। उधर हीर के बाप ने अवसर पाकर हीर को जहर दे दिया। बेचारी मर गई। उधर रांझे को कहला भेजा कि तुम्हारे जाने के बाद हीर बीमार हो गई थी। बहुत दवा-दारू की, पर सब बेकार। कई

दिनों की बीमारी के बाद वह इस दुनिया से चल बसी।

उधर जब यह खबर पहुँची उस वक्त बरात चलने को तैयार थी। रांझे ने हीर के मरने की खबर सुनी तो पछाड़ खाकर गिर पड़ा। भाइयों ने झपटकर उसे उठाना चाहा, पर वह तो सदा-सदा के लिए सो गया था।

सस्सी-पुन्नूं

कई सौ वर्ष पहले की बात है। सिन्धु नदी के किनारे एक शहर था। नाम था भंबोर। आदमजाम यहां का बादशाह था। आसपास के सारे इलाके पर इसकी हकूमत थी। बादशाह आदमजाम अधेड़ अवस्था को पहुंच चुका था किन्तु उसके घर कोई सन्तान नहीं थी। एक दिन उसने ज्योतिषियों को बुलाया और कहा—आप सभी सोच-विचार-कर बताइए कि मेरे भाग्य में सन्तान होना लिखा भी है या नहीं। ज्योतिषियों ने अपनी-अपनी पोथियां खोलीं ; कुछ उंगलियों पर गिना, हिसाब लगाया। फिर आपस में खुसर-पुसर करने लगे। उनके चेहरों पर चिन्ता की झलक दिखाई दे रही थी।

आदमजाम से उनकी परेशानी छिपी नहीं रही। उस ने कहा—आप सब मुझे साफ-साफ बताइए कि बात क्या है—जो भी आपका हिसाब बताता हो। इसमें डरने छिपाने की ज़रूरत नहीं।

सभी एकसाथ बोल पड़े—बादशाह सलामत ! बात कुछ ऐसी ही है कि सबके सामने बताना ठीक नहीं। पर बादशाह ने फिर ज़ोर देकर कहा कि जो भी बात है, सब

के सामने ही बताओ। जो भी तुम्हारी समझ में आता हो।

यह सुनकर उनमें से एक बूढ़ा ज्योतिषी आगे बढ़ा और कहने लगा—बादशाह सलामत ! हमारे शास्त्र कहते हैं कि आपके घर थोड़े दिनों बाद एक लड़की पैदा होगी। इतनी सुन्दर कि उसके सामने पूनो का चांद भी शरमाएगा। पर यह शहज़ादी पश्चिम के किसी शहज़ादे के प्रेम में दीवानी हो जाएगी और उसके प्रेम में अपनी जान तक गंवा बैठेगी।

बादशाह ने सुना तो सन्न रह गया। सारे दरबार में भी सन्नाटा छा गया। फिर बादशाह ने सोचा—ज्योतिषियों की सभी बातें तो सच नहीं होतीं। फिर यह बात सच होगी, इसीका क्या भरोसा !

करनी भगवान् की ; उसी साल बादशाह के घर एक लड़की पैदा हुई। बादशाह ने लड़की पैदा होने की खबर सुनी तो वज़ीर को बुला भेजा। और कहने लगा—ज्योतिषियों ने जो कुछ कहा था, उसमें से पहली बात तो सच ही निकली। लड़की पैदा हो गई। मुझे विश्वास है कि दूसरी बात भी पूरी होकर रहेगी। पर मैं नहीं चाहता कि शाही घराने में वे सारी बातें हों और हमारे माथे पर कलंक का टीका लगे। मेरे विचार में इन सब बातों से बचने का एक ही तरीका है और वह यह कि इस लड़की

को मार डाला जाए।

वजीर ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—बादशाह सलामत ! जो होना है, वह जरूर होकर रहेगा। भगवान् पर भरोसा रखिए। यह भी तो हो सकता है कि ज्योतिषियों की बात झूठ निकले। इसे बेटा समझिए और भगवान् की इस कृपा के लिए उसका धन्यवाद कीजिए। बादशाह को समझाने के लिए वज़ीर ने इसी तरह की और भी कितनी ही बातें कीं पर बादशाह ने उसकी एक न सुनी; एक न सुनी।

बादशाह की जिद को देखकर आखिर वज़ीर ने कहा—अगर ऐसी ही बात है तो भी आप इसे मारिए मत। बेकसूर बच्ची की मौत के लिए भगवान् कभी क्षमा नहीं करेगा। आप इसे एक सन्दूक में बन्द करके नदी में बहा दीजिए। भगवान् उसे बचाना चाहेंगे तो बचा लेंगे। वह सन्दूक किसीकी नज़र में पड़ जाएगा और वह उसे नदी से निकाल लेगा। नहीं तो यह बच्ची सन्दूक में बन्द पड़ी खुद-बखुद मर जाएगी।

बादशाह को यह बात बहुत अच्छी लगी। उसी समय एक सन्दूक बनवाने की आज्ञा दी गई। सन्दूक बनकर तैयार हो गया तो फिर वज़ीर को बुलाया गया। यह सन्दूक विशेष रूप से इस ढंग से बनाया गया था कि इस-

में पानी न जा सके और हवा पहुंचती रहे।

सन्दूक को अच्छी तरह देखने के बाद वज़ीर ने कहा—हुज़ूर, मेरे विचार में इस सन्दूक में काफी रुपया-पैसा रख दिया जाए ताकि अगर कोई इस सन्दूक को पाकर इस बच्ची को पाल ले तो यह रुपया काम आए।

बादशाह को यह बात जंच गई। उस समय खज़ानची को कहकर बहुत से हीरे-मोती, सोना-चांदी और मोहरें वज़ीर के हवाले कर दी गईं। उसने इन चीज़ों के तीन हिस्से किये। एक कागज़ में इन तीनों हिस्सों के खर्च का ब्यौरा लिखा। एक हिस्सा लड़की के पालने-पोसने के लिए था, दूसरा उसकी पढ़ाई-लिखाई के लिए और तीसरा शादी होने के समय दहेज के लिए।

यह कागज़ उसने बड़ी सावधानी के साथ तह कर के सन्दूक में रख दिया। फिर उसने एक दूसरे कागज़ पर लिखा कि यह लड़की भंबोर के बादशाह आदमजाम की बेटी है। यह सब इन्तज़ाम करने के बाद वह रात के आने का इन्तज़ार करने लगा। वह उस बच्ची को सन्दूक में डालकर रात के अन्धेरे में नदी में बहाना चाहता था।

जब अधराता हो गया तो बादशाह आदमजाम अपने महल के ज़नानखाने से सोई हुई उस बच्ची को उठा लाया। वज़ीर पहले ही उसका इन्तज़ार कर रहा था।

दोनों ही दुनिया की नजर बचाकर सन्दूक समेत नदी के किनारे पहुंचे। लड़की को सन्दूक में रखकर सन्दूक को अच्छी तरह बन्द किया। फिर दिल कड़ा करके उस नन्ही-मुन्नी समेत सन्दूक को नदी की लहरों के हवाले कर दिया। यह काम बिल्कुल गुप्त रीति से किया गया। किसीको कुछ पता नहीं लगा।

२

भंबोर में एक धोबी रहता था। नाम था अता। शहर के सभी अमीर-उमरा इसीसे अपने कपड़े धुलाते थे। अता वैसे कोई गरीब धोबी नहीं था। पर उसके घर भी कोई सन्तान नहीं थी। बस यही गम उसे दिन-रात खाए डालता था।

कोई पहर भर रात बाकी थी। अता आंखें मलता हुआ उठा। फिर उसने अपनी घर वाली को जगाया। दोनों धुलाई के लिए नदी की तरफ चल दिये। आकाश में तारे चमक रहे थे। पिछले पहर का धुन्धलका सभी चीज़ों पर छाया हुआ था। अता नदी के किनारे धोबीघाट पर पहुंचकर कपड़े धोने की तैयारी करने लगा। उसने अभी पहला कपड़ा ही धोना शुरू किया था कि उसे नदी की धारा में कोई काली-काली-सी चीज़ बहती दिखाई दी।

इस समय तक पौ फटने लगी थी और हल्का-सा प्रकाश फैलने लगा था। अता ने उसे और ध्यान से देखा तो मालूम हुआ कि वह एक सन्दूक है। और हिचकोले खाता, डूबता-उबरता बहता चला जा रहा है। वह तैरता हुआ उस सन्दूक की तरफ लपका और जल्दी ही उसे किनारे तक खींच लाया।

प्रभात के सूर्य की पहली किरण नदी की लहरों पर पड़कर थिरक रही थी। अता ने कुछ आश्चर्य और कुतूहल के साथ सन्दूक खोला। देखते ही एक अजीब से भाव के कारण उसकी आंखें खुली की खुली रह गईं। उसके सामने चांद-सी एक नन्हीं बच्ची मखमली गदेलों में पड़ी सो रही थी। अंगूठा उसके मुंह में था और इस नींद में भी वह जब-तब उसे चूस लेती थी। अता का मन इस बच्ची को देखकर बल्लियों उछलने लगा। वह एकटक उसे देख रहा था और इधर-उधर उसका कतई ध्यान नहीं था। जब वह उसे उठाने को हुआ तो उसके आसपास रखे हुए हीरे-मोतियों और सोने-चांदी पर उसकी नज़र पड़ी। इन-की चमक-दमक से उसकी आंखें चौंधिया गईं। उसने बच्ची को उठाया और अपनी घरवाली को देकर कहा कि ले; औलाद को रोती थी। यह बच्ची भगवान् ने तेरे लिए भेजी है। सन्दूक उन्होंने कपड़ों से ढक दिया ताकि दूसरे

धोबी न देख लें। धोबिन तो बच्ची को लेकर घर चली गई और धोबी अकेला दिन छिपने तक काम करता रहा। आज एक तो वह अकेला था और दूसरे वह जान-बूझकर धीरे-धीरे काम कर रहा था ताकि दूसरे सब धोबी चले जाएं तो वह सन्दूक की दौलत को घर ले जाए। कपड़ों और दौलत को लेकर जब वह घर पहुंचा तो खासा अंधेरा हो चुका था।

अता ने इस लड़की का नाम रक्खा सस्सी। वह बड़े चाव और ममता से उसका पालन करने लगा। वैसे वह चाहता तो सन्दूक में मिली दौलत से बड़े आराम के साथ अपने दिन काट सकता था किन्तु उसने यह ठीक नहीं समझा। उसने वह सारी दौलत पराई अमानत समझी और अपने लिए उसमें से एक कौड़ी भी खर्च नहीं की। वह पहले ही की तरह अपने धन्धे में लगा रहता और उसीसे अपना खर्च चलाता।

सस्सी कुछ बड़ी हुई तो उसने उसे पढ़ाना-लिखना शुरू किया। वह बड़ी होशियार निकली और खूब चाव से पढ़ने लगी। अता और उसकी बीबी इस होनहार बच्ची को देख-देखकर फूले न समाते। वे उसे घड़ी भर के लिए भी आंखों से ओझल न होने देते।

सस्सी जब जवान हुई तो सबकी नज़रें उसपर पड़ने

लगीं। उसका सुन्दर गोरा चेहरा, बड़ी-बड़ी काली आंखें, भरा हुआ सुडौल शरीर, एड़ियों को छूते बाल और अल्हड़ मस्तानी चाल राह-चलतों को अपनी ओर खींचते थे। जो भी उसे देखता, पलभर तो ठिठककर रह जाता। जो नहीं जानते थे, वे दूसरों से पूछते—कौन है यह ? किसकी लड़की है? क्या अभी इसका ब्याह नहीं हुआ ? शहज़ादी-सी मालूम पड़ती है ! अरे धोबी की बेटी इसे कौन मानेगा ? बड़ी किस्मत वाला होगा, जो इसे पाएगा !

ये सब बातें सस्सी के कानों तक भी पहुंचीं। तब वह अपने ही बारे में तरह-तरह की बातें सोचने लगती। उड़ते-उड़ते यह बात भी उसे मालूम हो गई थी कि वह उनकी अपनी बेटी नहीं है और उन्हें घाट पर मिली है। आखिर उसने निश्चय किया कि वह एक दिन माता-पिता से यह सब पूछेगी। और दिल कड़ाकर के एक दिन उसने पूछ ही लिया। अता ने पहले तो सोचा कि किसी तरह इसे टाल दिया जाए पर जब वह नहीं मानी तो उसने बताया—बेटी ! तू हमें एक सन्दूक में बन्द, नदी में बहती हुई मिली थी, उसमें बहुत-सी दौलत भी थी। वह सब तेरी अमानत है और हमने उसमें से कौड़ी भी नहीं खर्ची है। सस्सी ने वह सन्दूक और दौलत देखी। वह कागज़ भी उसे मिल गया। उसने पढ़कर देखा तो सब समझ गई। पर यह सब उसने

अता को नहीं बताया।

३

भंबोर से पश्चिमी ओर खेम मकरान का इलाका है। उस समय खेम मकरान पर अलीखां की हकूमत थी। बादशाह अलीखां का एक बेटा था। नाम था पुन्नूंखां। पुन्नूं बड़ा सजीला और बांका नौजवान था। प्रजा उसे बहुत चाहती थी। जिस ओर वह निकल जाता, देखने वालों की भीड़ इकट्ठी हो जाती।

एक बार गज़नी का एक व्यापारी वहां पहुंचा। इसे देश-देश घूमने और सुन्दर स्थानों के चित्र बनाने का बड़ा शौक था। क्योंकि पुन्नूं की जवानी, खूबसूरती और बहादुरी की प्रशंसा हर आदमी की ज़बान पर थी, इसलिए उस चितेरे व्यापारी ने पुन्नूं से मिलने और उसकी तस्वीर बनाने का निश्चय किया।

वह एक दिन बहुत-सी भेंट की चीजें लेकर पुन्नूं के पास पहुंचा। और तस्वीर बनाने की आज्ञा मांगी। पुन्नूं ने उसे अपनी तस्वीर बनाने की आज्ञा दे दी। उसने तस्वीर पूरी की और फिर कुछ दिन वहां ठहरकर लोगों से भंबोर शहर की प्रशंसा सुनकर उसी ओर चल दिया।

नदी के तट पर बसा भंबोर शहर उसे खूब पसन्द

आया। नई-नवेली दुल्हन की तरह सजा हुआ यह शहर, यहां का जल-वायु और समूचा वातावरण काफी मनमोहक था। उसने अब यहीं रहने का निश्चय किया। क्योंकि वह कलाकार था, इसलिए उसने नदी के किनारे एक जगह खरीद ली। वहां एक सुन्दर बगीचा लगवाया और इस बगीचे के बीचोंबीच संगमर्मर का एक भवन बनवाया। उस भवन को उसने अपने हाथ की, देश-देश और जगह-जगह के सुन्दर दृश्यों और लोगों की बनाई हुई तस्वीरों से सजाया। इन्हीं तस्वीरों में खेम मकरान के शहज़ादे पुन्नूंखां की तस्वीर भी थी। इस तस्वीर में पुन्नूं सफेद घोड़े पर सवार, पगड़ी में कलगी लगाए और हाथ में बरछा लिए दिखाया गया था। घोड़े ने अगले दोनों पांव यों उठा रखे थे, जैसे उड़ान भरना चाहता हो। इस बाग पर लाखों रुपया खर्च हो गया था, इसलिए इसका नाम 'लाखी बाग' पड़ गया था।

यह काम समाप्त हुआ तो इस व्यापारी ने इस बाग के पिछली ओर एक सराय बनवाई। यह सराय खास तौर पर दूसरे देशों से आने वाले व्यापारियों के लिए थी।

सस्सी को जब से यह मालूम हुआ था कि वह भंभोर के सुलतान की बेटी है, तब से उसके मन में नए-नए विचार आने लगे थे। उसने एक रात सपना देखा कि चांदनी रात

में वह बाग की सैर कर रही है। एकाएक चांद का एक टुकड़ा उसकी गोद में आ गिरा। कुछ दिन बाद उसने एक और सपना देखा। उसे एक शहज़ादा दिखाई दिया—बड़ा रूपवान्। सस्सी उसे देखते ही सुध-बुध खो बैठी। जब कुछ संभली और उस शहज़ादे से कुछ बात करना चाहती थी पर इतने में आंख खुल गई।

उस दिन से सस्सी खोई-खोई-सी रहने लगी। दिन-रात आंखों में उसी शहज़ादे का चेहरा घूम जाता। न खाने-पीने में मन लगता और न काम-काज में।

एक दिन उसकी सहेलियां ज़िद करके उसे लाखी बाग की सैर को ले गईं। सस्सी उनके साथ घूमती-फिरती संगमर्मर के भवन में पहुंची। वह वहां टंगी तस्वीरों को देखने लगी। देखते-देखते उसकी नज़र पुन्नूं की तस्वीर पर पड़ी। यह तो वही चेहरा है जो उसने सपने में देखा था। सभी कुछ वैसा ही। उसे यह तो मालूम नहीं हो सका कि यह कौन है, कहां का रहने वाला है और इसका क्या नाम है, पर उसे यह जानकर ज़रूर सन्तोष हुआ कि मेरे सपने की तस्वीर केवल सपने की बात नहीं है। वह इस धरती पर मौजूद है। और अगर भगवान् ने चाहा तो सपना एक दिन सच्चा होकर रहेगा। वह मुझे ज़रूर मिलेगा।

अब तो दिन-रात वह चेहरा उसके दिल और दिमाग

पर छाया रहता। इसी तरह तेरह दिन बीत गए। एक रात को फिर वही शहज़ादा सपने में दिखाई दिया। आज सपने में उससे बातें भी हुईं। उसने अपना नाम पुन्नूं बताया और यह भी कहा कि अगर मुझसे मिलना चाहती हो तो खेंम मकरान में चली आओ। मेरा बाप खेंम मकरान का बादशाह है और मैं उसका इकलौता बेटा हूं।

इधर सस्सी पुन्नूं के प्रेम में दीवानी हो रही थी। और अता धोबी जल्दी उसे ब्याह देने की चिन्ता में था। उसकी बिरादरी के सभी लोग चाहते थे कि सस्सी हमारे घर की बहू बने। धोबियों के नौजवान लड़के अता के घर के चक्कर काटा करते थे कि एक नज़र सस्सी को देखभर लें। वह सभी नौजवानों के सपनों की रानी बनी हुई थी पर उसके सपनों का राजा तो कोई और ही था। किसी के साथ उसके रिश्ते की बात चलती तो वह मना कर देती। इसपर कुछ लोग चिढ़ गए और उन्होंने उसे परेशान करने की सोची। एक आदमी ने, जो बादशाह का मुंह-लगा था, बादशाह आदमजाम को कहलवाया कि भंबोर में अता नाम का एक धोबी रहता है। उसकी बेटी ऐसी रूपवती है कि सारे शहर के नौजवान उसके लिए दीवाने हो रहे हैं। सच तो यह है कि रूप और जवानी की वह देवी शाही जनानखाने की शोभा बढ़ाने के योग्य है।

बादशाह का मन भी उसके रूप-जोबन का बखान सुनकर चंचल हो उठा। उसने अता धोबी को दरबार में बुलाया। जब वह हाज़िर हुआ तो उसे हुक्म दिया—अपनी लड़की को तुरन्त शाही महल में भेज दो। भला एक धोबी शाही फरमान को कैसे टाल सकता था! वह डरता-कांपता घर पहुंचा। उसने सारी बात सस्सी को कह सुनाई।

सस्सी ने बादशाह के नाम एक चिट्ठी लिखी और अपनी राम-कहानी उसमें लिख भेजी। चिट्ठी पढ़ते ही बादशाह सन्न रह गया। उसी रात को बादशाह बेगम को साथ लेकर अता धोबी के घर पहुंचा। मां-बाप आज बड़े प्रेम से बचपन से छोड़ी हुई अपनी बेटी से मिले। शर्म के मारे बादशाह का तो बुरा हाल था। वह अपनी ही बेटी को आंख उठाकर नहीं देख रहा था। बचपन में उसने इस बेटी को नदी में बहा दिया था और अब वह नौजवान हो चुकी थी, और वह नहीं जानता कि यह उसीकी बेटी है, तो वह उसे अपने ज़नानखाने में रखना चाहता था। वह अपनी करतूतों के कारण धरती में गड़ा जा रहा था। मां, बाप और बेटी तीनों की आंखों में प्रेम के आंसू छलछला रहे थे। अन्त में बादशाह ने कहा—बेटी, मुझे क्षमा कर दो। जो कुछ हुआ है उसे भूल जाओ और अब अपने घर चलो। पर सस्सी ने साफ इनकार कर दिया। कहने लगी—पिताजी, अब मुझे यहीं रहने

दीजिए। मैं चाहती हूं कि जिन्होंने मुझे पाला-पोसा है, मैं उन्हींके बीच रहूं।

माता-पिता ने बहुत समझाया-बुझाया पर सस्सी बात पर अड़ी रही। जब बादशाह ने देखा कि वह नहीं मानेगी तो कहने लगा—अच्छी बात है। अगर तुम्हारी यही मर्जी है तो यहीं रहो। पर जब भी किसी चीज़ की जरूरत हो मुझे संदेसा भेजना, मैं उसी वक्त भेज दूंगा। मुझे पूरी आशा है कि तुम मुझसे कहने में किसी तरह की शर्म नहीं करोगी।

सस्सी ने कहा—मुझे और तो किसी चीज़ की जरूरत नहीं है। हां, मुझे यह लाखी बाग बहुत पसन्द है। अगर आप यह बाग मुझे दिलवा सकें तो दिलवा दें।

सस्सी की मांग सुनकर आदमजाम को बहुत खुशी हुई। उसने समझ लिया, सस्सी ने मुझे क्षमा कर दिया। उसने उसी दिन लाखी बाग बनवाने वाले उस व्यापारी को बुलाया और उसे मुंह मांगे दाम देकर लाखी बाग खरीद लिया।

अब सस्सी लाखी बाग में रहने लगी। सस्सी ने लाखी बाग को और भी सजाना-संवारना शुरू किया। दूर-दूर के देशों के रंग-बिरंगे फूलों के पौधे वहां लगाए। अच्छे-अच्छे माली बाग की देख-भाल के लिए रखे। इस बाग में उसका जी

बाग-बाग हो जाता। उसका मन खिले फूलों को देखकर खिल उठता। जब कभी उसे पुन्नूं की याद सताती तो वह बाग के भवन में लगी, उसकी तस्वीर के सामने जा खड़ी होती और तस्वीर से यों बातें करने लगती, जैसे वह तस्वीर न होकर, सचमुच पुन्नूं ही हो।

बाग के पिछली ओर सराय थी। उसका इन्तज़ाम अब सस्सी के हाथ में था। दूर-दूर के व्यापारियों के काफिले उसमें आकर ठहरते। उनकी सुविधा का सस्सी पूरा-पूरा ध्यान रखती। उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ न होने देती। एक दिन उसे पता चला कि खेम मकरान से व्यापारियों का एक काफिला आया है और सराय में ठहरा है। सस्सी ने काफिले के सरदार को बुलाया, फिर उसने पुन्नूं के बारे में पूछा। सरदार ने कहा—भला खेम मकरान में कौन ऐसा अभागा होगा जो पुन्नूं को न जानता हो और उसे दिल से प्यार न करता होगा। तब सस्सी ने उससे कहा—तो आप अपने साथ एक आदमी लेकर जाइए और पुन्नूं को अपने साथ यहां लाइए। जब तक उसे साथ लेकर आप यहां न लौटेंगे, आपका काफिला यहां नज़रबन्दी की हालत में रहेगा। और जब आप उसे साथ ले आएंगे तो मुंहमांगा इनाम दिया जाएगा।

यह सुना तो सरदार का रंग उड़ गया। पर मरता

क्या न करता ! बेचारा उसी दिन एक भरोसे के साथी को लेकर खेम मकरान की ओर चल पड़ा। वहां पहुंचकर सुलतान के दरबार में हाज़िर हुआ और अर्ज़ की कि अगर हज़ूर, शहज़ादे पुन्नूं को हमारे साथ भंबोर भेजने की इजाज़त दें तो दास पर बड़ी मेहरबानी होगी। और सारा किस्सा कह सुनाया। सुलतान ने जब पुन्नूं को भेजने की इजाज़त दे दी तो वह शहज़ादे पुन्नूं के पास पहुंचा। उसने बातों में पहले तो भंबोर शहर की तारीफ के पुल बांधे, फिर सस्सी के रूप-जोबन का कुछ ऐसे ढंग से वर्णन किया कि शहज़ादा उसके साथ भंबोर चलने के लिए तैयार हो गया।

भंबोर में सस्सी बड़ी बेचैनी से पुन्नूं की बाट जोह रही थी। उसे पूरा भरोसा था कि पुन्नूं ज़रूर आएगा। वह दिन-रात उसीके बारे में सोचती रहती। कैसा होगा वह ! क्या जैसा तस्वीर में है वैसा ही ! वह मुझसे प्रेम करेगा भी या नहीं ? शाहज़ादा जो ठहरा ! उसे रूप और जवानी की कमी थोड़े ही होगी। कहीं वह पहले ही अपना दिल किसीको न दे बैठा हो। हे भगवान् ! मेरा पुन्नूं मुझे मिल जाए, बस फिर मैं तुमसे और कभी कुछ न मांगूंगी। ऐसे ही वह पुन्नूं के ख्याल में डूबी तरह-तरह की बातें सोचती रहती।

एक दिन इसी तरह बैठी सस्सी ख्याली दुनिया में डूबी हुई थी कि बाग के चौकीदार ने आकर खबर दी कि सराय में एक नया काफिला आया है। और उस काफिले के ऊंट बाग को वीरान किए दे रहे हैं। सस्सी खुद बाग में पहुंची। पुन्नूं को लाने जो दो सौदागर भेजे गए थे, वे एक तरफ नींद में बेसुध सोए पड़े थे। और उनके ऊंट बाग के पेड़-पौधों को तहस-नहस किए डाल रहे थे। सस्सी ने उन्हें जगाया। वे चौंककर उठ खड़े हुए। तब उसने पुन्नूं के बारे में पूछा। वे कहने लगे—जी हां, हम उन्हें अपने साथ ले आए हैं। वे बहुत थके-हारे हैं और सामने वाले मकान में आराम कर रहे हैं। इस समय शायद सोये हुए हैं।

सस्सी घबराती-कांपती दबे पांव उस मकान में पहुंची। पुन्नूं एक पलंग पर गहरी नींद में सोया पड़ा था। पहली नजर में ही सस्सी ने उसे पहचान लिया। वही दमकता हुआ चेहरा, गोरा गुलाबी रंग। नींद में मुंदी आंखें और भी प्यारी लग रही थीं। लम्बी-चौड़ी भरी-भरी देह, जैसे सांचे में ढली हो। सस्सी उसके पलंग के पैताने जा बैठी और पंखा झलने लगी।

थोड़ी देर में पुन्नूं की आंख खुली। उसकी पहली नजर पैताने बैठी पंखा झलती सस्सी पर पड़ी। ऐसा रूप,

मदमाता जोबन तो उसने पहले कभी नहीं देखा था। वह क्षण भर तो उसे देखता रहा। दोनों की नजरें मिलीं, जैसे एक-दूसरे को पहचान रहे हों। जैसे एक-दूसरे को जन्म-जन्म से पहचानते हों, जन्म-जन्म के साथी हों, कई दिनों के बिछुड़े आज मिले हों। पर दोनों चुप, जैसे आंखों ही आंखों से एक-दूसरे की रूप-सुधा का पान कर रहे हों। क्या कहें, क्या न कहें। क्या पहले कहें, क्या बाद में। पर जैसे ज़बान का काम आंखें कर रही हों। आंखों ही आंखों में जैसे दोनों ने सब कुछ कह डाला हो। पहली ही भेंट में वे एक-दूसरे के हो गए। उन्होंने अपने दिल आपस में बदल लिए।

कुछ दिन बाद सस्सी से पुन्नू के ब्याह की तैयारियां होने लगीं। सुलतान आदमजाम खुद तो ब्याह में शामिल नहीं हुआ, पर ब्याह का सारा खर्च और दहेज उसने भिजवा दिया। बड़ी धूम-धाम से बरात आई। नौबत बजने लगी। राग-रंग और बाजे-गाजे के शोर में किसीको कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। काजी ने निकाह पढ़ा। ब्याह का सब काम ठीक तरीके से हो गया। सब अपने-अपने घर गए।

सस्सी और पुन्नू के दिन अब बड़े मजे में कटने लगे। व्यापारियों का काफिला वापस खेम मकरान लौट गया।

सुलतान को जब पता लगा कि काफिला तो वापस आ गया पर शहजादा पुन्नूं उनके साथ नहीं है। तब उसने काफिले के सौदागर को बुला भेजा। जब वह दरबार में हाजिर हुआ तो बादशाह ने हुक्म दिया कि अभी लौटकर जाओ और पुन्नूं को वापस लाओ, नहीं तो तुम्हारी सारी जायदाद जब्त कर ली जाएगी और तुम्हें मौत के घाट उतार दिया जाएगा।

बेचारे क्या करते! फिर वापस भंबोर पहुंचे। पुन्नूं तो वहां सस्सी के प्रेम में डूबा सारी दुनिया को जैसे भूल गया था। जैसे दुनिया के सारे सुख उसे सस्सी में मिल गए हों। फिर भी जब सरदार उससे मिला तो उसे खुशी ही हुई। वे रात काफी देर तक बैठे बातें करते रहे। जब आस-पास के लोग सो गए तो सरदार ने शरबत में नशीली चीज मिलाकर पुन्नूं को पिला दी। पुन्नूं पी गया। उसे क्या मालूम था कि उसके लिए जाल बिछाया जा रहा है। थोड़ी ही देर में उसपर बेहोशी छा गई। तब वे उसे चुप-चाप उठाकर ले गए और पहले से तैयार खड़े ऊंटों की पीठ पर लादकर खेम मकरान की ओर चल दिए।

५

सस्सी सजी-संवरी सोलह सिंगार किए पुन्नूं का इन्त-

जार कर रही थी। एक पहर रात बीती। आधी रात हो गई। रात का तीसरा पहर भी बीत चला। दरवाज़े की तरफ़ देखती-देखती सस्सी की आंखें थक चलीं। पिछला पहर भी बीत चला। पर पुन्नूं नहीं आया, नहीं आया। इतने में नौकरों ने खबर दी कि न तो पुन्नूं का कहीं पता है और न खेम मकरान के उन व्यापारियों का, जो आज खेम मकरान से आए थे। पुन्नूं उन्हींके पास बैठा था पर अब तो वहां पर कोई भी नहीं दीखता। यह सुनते ही सस्सी पछाड़ खाकर गिर पड़ी। जब होश आया तो ढाएं मारकर रोने लगी। फिर कुछ संभली। मन ही मन कुछ निश्चय किया। फिर घर से निकल खड़ी हुई। ऊंटों के पांवों के निशान देखती हुई, उसी ओर चल दी। रास्ते में एक लम्बा रेगिस्तान था। लोग उसे 'थलमारू' कहते थे। इस रेगिस्तान में कोसों आदमी तो क्या, कंटीली झाड़ी तक न थी। पानी की बूंद नहीं। ऊपर से सदा रेतीले तूफान आते रहते और पूरे के पूरे काफिले उनमें दबकर रह जाते।

लाड़-प्यार में पली सस्सी कभी दो कोस भी नहीं चली थी। वह इस रेगिस्तान को किस बल-बूते पर पार करती! पर प्रेम की शक्ति ने उसके पांवों में ऐसी ताकत भर दी थी कि वह बिना रुके बढ़ी जा रही थी। उसका

चेहरा पीला पड़ चुका था। प्यास के मारे होंठों पर पपड़ियां जम गई थीं। जीभ तालू से जा चिपकी थी और दिल बैठा जा रहा था। रेतीली हवा के कारण आंखें खोलना कठिन था। धूप से उसके बाल, चेहरा और कपड़े बुरी तरह अटे पड़े थे।

पर फिर भी वह प्रेम-दीवानी 'पुन्नूं-पुन्नूं' पुकारती अंगारों जैसे तपे बालू के मैदान में चली जा रही थी।

दोपहर को जब सूरज सिर पर आ गया और तेज लू के झोंके चलने लगे तो सस्सी के पांव लड़खड़ाकर रह गए। वह बेबस गिर पड़ी। बस, फिर तो गिरना, गिरकर उठना; फिर गिरना और फिर उठना, यही सिलसिला शुरू हो गया। शरीर बेबस था। पर मन की, प्रेम की शक्ति जैसे उस बेबस शरीर को खींचे लिए जा रही थी। इसी तरह बड़ी कठिनाई से वह कुछ ही कदम आगे बढ़ी थी कि चक्कर खाकर फिर गिर पड़ी।

संयोग की बात! इसी समय एक गड़रिया उस तरफ से निकला। उस एकरस रेगिस्तान में बेहोश पड़ी सस्सी ऐसी दीख रही थी जैसे भोर के नीले आकाश की एकरसता को तोड़ता भोर का तारा दीखता है। उसने और पास आकर देखा—एक नवेली दुलहन सिर से पांव तक कीमती गहनों से लदी बेहोश पड़ी है। उसके हाथ-पांव

मेंहदी से रंगे हैं। रूप ऐसा कि जो एक बार देख ले उसका दास बन जाए। पीला चेहरा, होंठों की पपड़ियां और पांवों के छाले उसकी कहानी कह रहे है। कीमती गहनों को देखकर उसका मन ललचाया, वह गहने उतारने के लिए और आगे बढ़ा पर चौंककर पीछे हट गया। हुआ यह कि ज्योंही वह गहने उतारने की नीयत से सस्सी की तरफ बढ़ा तो धरती फट गई और सस्सी की देह उसमें समा गई।

इस चमत्कारपूर्ण घटना को देखकर गड़रिया बहुत प्रभावित हुआ। जहां से धरती फटी थी और सस्सी की देह उसमें समा गई थी, वहां उसने कबर का निशान लगा दिया। फिर फातिहा पढ़ा और वहीं बैठ गया।

उधर ऊंट पर लदे पुन्नूं को जब होश आया और पता लगा कि उसे ज़बरदस्ती सस्सी से दूर ले जाया जा रहा है तो चुपके से भाग निकला। वह तेज़ी से पिछले पांव चल पड़ा। चलते-चलते वह सस्सी की कबर के पास पहुंचा। गड़रिया अब भी वहीं बैठा था। पुन्नूं ने देखा कि कबर तो किसी ताज़ा ही दफनाए गए की नज़र आती है। उसने गड़रिये से पूछा—तुम कौन हो भाई! यहां क्यों बैठे हो? यह कबर किसकी है?

गड़रिये ने उत्तर दिया—भाई! मैं तो सिर्फ इतना

ही जानता हूं कि एक नौजवान लड़की 'पुन्नूं-पुन्नूं' पुकार रही थी। वह यहां गिर पड़ी थी। फिर थोड़ी देर में धरती फटी और वह उसमें समा गई।

यह सुनते ही पुन्नूं दहाड़ मार-मारकर रोने-चिल्लाने लगा और फिर बेहोश होकर कबर पर गिर पड़ा।

●

सोहनी-महीवाल

कोई दो सौ साल पुरानी बात है। बलख शहर में एक सौदागार था। उसके पास इतनी दौलत थी कि उसे खुद उसके बारे में ठीक-ठीक मालूम नहीं था। वह अनेक चीज़ों का व्यापार करता था। इनमें पश्मीना, रेशम, ईरानी कालीन, हीरा-मोती, लाल-जवाहर, सोना-चांदी सभी कुछ शामिल था। उसका व्यापार कई देशों में फैला हुआ था। उसका माल लाने, ले जाने वाले काफिलों का हमेशा तांता लगा रहता था। बड़ी साख थी उसकी। उसके हाथ में ऐसी बरकत थी कि मिट्टी में हाथ डालता तो वह भी सोना बन जाती। और फिर दौलत से सभी कुछ नहीं तो बहुत कुछ तो खरीदा जा ही सकता था। सुख-चैन का सभी सामान उसके पास था। अगर नहीं थी तो एक सन्तान, और अकेले सन्तान न होने की वजह से सब सुख फीका लगता। यह ढेरों दौलत तो कभी-कभी उसे और भी दुःखी और बेचैन कर देती। जब कभी वह सोचता कि मेरे बाद इस धन-दौलत का क्या होगा, तो उसका मन गहरी चिंता से भर जाता। उसका जी चाहता कि मैं यह सब कारोबार समेट लूं। आखिर यह सब किसलिए ? किसके लिए ! वह

दीन-दुखियों की सहायता करता। लोगों के लाभ के कामों पर खर्च करता। सोचता—शायद मेरे इन्हीं कामों से रीझकर भगवान मुझे सन्तान दे दें।

आखिर जब उसकी जवानी चलने लग पड़ी, तो उसके मन की मुराद भी भगवान् ने पूरी कर दी। एक बेटा पैदा हुआ। फिर उसकी खुशी का क्या ठिकाना! इस खुशी में उसने अनगिनत दौलत बांटी-लुटाई।

लड़के का नाम रक्खा इज़्ज़तबेग। बड़े लाड़-प्यार, चाव-चोंचलों से उसका पालन-पोषण होने लगा। जब कुछ बड़ा हुआ तो योग्य उस्ताद उसे पढ़ाने-लिखाने के लिए रख दिए गए।

इज़्ज़तबेग बड़ा होनहार लड़का था। उसकी बोल-चाल और स्वभाव बड़ा प्यारा था। वह सोच-समझकर बात करता। उसकी बुद्धि भी खूब तेज़ थी। शहर भर में उसकी सुन्दरता और समझदारी की चर्चा थी।

उन दिनों पाठशालाओं में जो कुछ पढ़ाई होती थी, वह सब उसने पूरी कर ली। फिर घुड़सवारी, तीर-तलवार चलाना और इसी तरह की दूसरी बातें सीखने लगा। घुड़सवार भी वह एक ही निकला। तेज़ दौड़ते घोड़े पर वह कूदकर चढ़ जाता और वैसे ही उतर भी आता। बिना देखे, केवल आवाज़ को निशाना बनाकर तीर चलाता पर क्या मजाल

कि उसका निशाना चूक जाए। और तलवार तो इस तेज़ी से चलाता जैसे कि बिजली कौंध रही हो।

इज़्ज़तबेग पूरा युवक बन गया। शहर के दूसरे बहादुर नौजवान जिनकी दूर-दूर तक धाक जमी हुई थी, उससे दबते थे। वह लम्ब-तड़ंग जवान था। लाली लिए गोरा चेहरा, जानुओं तक लम्बी मज़बूत बांहें, शेर की तरह चौड़ी छाती, उभरा हुआ दमकता माथा, तीखी नाक और आंखें ऐसी कि आदमी के भीतर भी झांक लेती हों। उसका एक-एक अङ्ग जैसे सांचे में ढला हो। इस बांके नौजवान बेटे को देखकर माता-पिता फूले न समाते। और चाहते कि उनका बेटा रात-दिन उनकी नज़रों के पास ही रहे।

अब भारत पर अकबर के पोते और जहांगीर के बेटे शाहजहां की हकूमत थी। दिल्ली इसकी राजधानी थी। दिल्ली के वैभव की प्रसिद्धि चारों दिशाओं में फैली हुई थी। शाहजहां को नई-नई इमारतें बनवाने का बड़ा शौक था। उसने आगरे में अपनी बेगम नूरजहां का मकबरा इतना सुन्दर बनवाया था कि आज भी दुनिया की कोई इमारत उसका मुकाबला नहीं कर सकती। दिल्ली में लाल पत्थर से उसने लालकिला बनवाया। और लालकिले के भीतर का तख्ते-ताउस, उसकी बात ही क्या है! इमारतें बनवाने के शौक के साथ-साथ वह दूसरे बादशाहों पर चढ़ाई भी

किया करता था। कभी-कभी तो उसकी फौजें बलख-बुखारे तक जा पहुंचती थीं। किन्तु दिल्ली से क्योंकि यह जगह बहुत ज्यादा दूर है, इसलिए इस शहर पर ज्यादा देर तक कब्जा जमाए रखना कठिन था।

यह ठीक है कि शाहजहां बलख पर हकूमत नहीं कर सका। फिर भी लोग उसके यश और वैभव से बहुत प्रभावित थे। उसकी राजधानी दिल्ली की चर्चा तो दूर-दूर फैली हुई थी। बलख के कुछ व्यापारी शाही फौजों के साथ दिल्ली और आगरा हो आए थे और शाहजहां की सल्तनत और हकूमत का ठाट-बाट देखकर बहुत प्रभावित थे।

जाड़े की ठंडी रातों में अलाव को घेरकर बैठे लोग ताज-महल की सुन्दरता, लाल किले की विशालता, मजबूती और खूबसूरती, भारतवासियों की समझदारी, ईमानदारी और बहादुरी, धन-दौलत, नदियों-पहाड़ों और इसकी सुन्दरता, और यहां के रीति-रिवाज आदि के बारे में विचित्र-सी बातें बड़े चाव से सुनते। पर सुनने वालों का जी कभी न अघाता और वे भारत के लोगों के भाग्य को सराहते। वे सोचते, काश कि वे भी इस देश में पैदा होते, या इस देश को देख पाते या सोचते कि कितना अच्छा होता कि वह सब कुछ उनके देश में भी होता। उनका बस चलता तो वे उड़-कर भारत पहुंच जाते।

इज़्ज़तबेग ने भी बड़े-बूढ़ों से ये सब कहानियां सुन रक्खी थीं। और भारत को देखने की चाह बचपन से ही उसके मन में थी।

अब वह स्याना हो गया था। कारोबार की देख-रेख भी करने लगा था। एक दिन उसने ठीक मौका देखकर अपने पिता से भारत की बात शुरू की। कहने लगा—पिताजी, अगर आप आज्ञा दें तो मैं भारत हो आऊं।

यह सुना तो बूढ़े बाप के चेहरे की रंगत उड़ गई। क्षण भर के लिए तो जैसे उसका सांस ही रुक गया। फिर अपने को सम्भालकर कहने लगा—बेटा, भारत यहां से कोई दो-चार दिन का रास्ता तो है नहीं कि आज गए और दस-बीस दिन में घूम-फिरकर लौट आए। वह तो बहुत दूर है। रास्ता भी बड़ा खराब है। कहीं ऊंचे पहाड़, कठिनाई से पार की जाने वाली घाटियां, घने बीहड़ जंगल, जिनमें खूंखार जानवर हर समय खून के प्यासे घूमते रहते हैं। कहीं नदियां और कहीं रेगिस्तान। दसियों मुसीबतों से भरा यह सफर है, बेटा! और इन खतरों से कोई पार पाले तो रास्ते के लुटेरों से जान बचाना तो और भी कठिन है। फिर तुम्हीं बताओ कि ऐसे सफर पर जाने की आज्ञा मैं तुम्हें कैसे दे सकता हूं? और तुम देख ही रहे हो कि बुढ़ापे ने मुझे किस तरह घेर लिया है। कुछ काम-काज भी अब मुझसे नहीं

होता। यहां का काम-काज कौन देखेगा ! इन सभी बातों को देखते हुए मैं तुम्हें कतई आज्ञा नहीं दे सकता।

इज्जतबेग बोला—पिताजी ! सौदागर का काम ही ज़िंदगी भर एक देश से दूसरे और दूसरे से तीसरे जाना होता है। आखिर मैं इस तरह कब तक घर बैठा रहूंगा ? एक न एक दिन तो मुझे जाना ही है। जाना ही पड़ेगा। फिर क्यों न अभी भगवान् का नाम लेकर चल पड़ूं। रही बात रास्ते की कठिनाइयों की। उसके लिए आप बिलकुल बेफिकर रहें। अभी कल ही बाबा मुराद दिल्ली से आया है। वह कहता है कि जब से शाही फौजें बलख से गई हैं, रास्ता बिलकुल साफ है। लाहौर तक एक चौड़ी सड़क बन गई है जिसपर घोड़े और ऊंट आसानी से गुज़र सकते हैं। नदी-नालों पर पुल बने हुए हैं। और चोर-डाकुओं का तो नाम-निशान तक मिट गया है।

अभिप्राय यह है कि बाप ने बहुत समझाया-बुझाया पर इज्जतबेग नहीं माना। आखिर बूढ़े बाप को चुप हो जाना पड़ा। और उसने जी कड़ा करके लड़खड़ाती आवाज़ में कहा —अच्छा बेटा ! तुम्हारी यही इच्छा है तो यों ही सही। लेकिन मेरी इजाज़त दे देने से क्या होना-जाना है। तुम्हारी मां इजाजात देगी तब न !

इज्जत बेग ने कहा—आपकी इजाज़त मिल गई। अब

उनसे भी मिल जाएगी। उन्हें मैं मना लूंगा।

जब मां ने सुना कि बेटा भारत जाने के लिए कमर कसकर तैयार है तो उसका हाल बेहाल हो गया। आंखों से झरझर आंसू टपकने लगे। उसने भी बेटे को बहुत रोका, अपनी ममता और बुढ़ापे की दुहाई दी पर सब बेकार। उलटे बेटे ने ही मां को समझा-बुझाकर अपने मतलब की बात कहलवा ली। आखिर उसने भी कह दिया—अच्छा बेटा, जाओ! भगवान् तुम्हारा मंगल करे। जिस तरह पीठ दिखा रहे हो, इसी तरह मुंह दिखाना।

इज़्ज़तबेग ने कहा—मां, तुम फिकर न करो। मैं जल्दी ही वापस लौट आऊंगा। यही कोई तीन महीने तक। तीन महीने गुज़रते देर ही कितनी लगती है! पलक झपकते गुज़र जाएंगे।

२

इज़्ज़तबेग जिसका फिले के साथ चला था, उसमें कोई पांच सौ आदमी और कई सौ ऊंट थे। ऊंटों पर तरह-तरह का सामान लदा था। क्योंकि रास्ते में लुटेरों का खतरा था, इसलिए काफिले के सभी लोग हथियारों से लैस थे। और अच्छी नस्ल के घोड़ों पर सवार थे।

बलख में काफिले को पता चल गया था कि भारत के

बादशाह के जन्मदिन का समारोह नज़दीक है। इसलिए वे चाहते थे कि इस जशन तक जरूर दिल्ली पहुंच जाएं। और यही कारण था कि काफिला रास्ते में कहीं भी एक रात से ज्यादा नहीं रुक रहा था। चलते-चलते जब लाहौर पहुंच गए तो कुछ लोगों का मत हुआ कि इस बड़े शहर में तो कुछ दिन ठहरना ही चाहिए। ताकि घूम-फिरकर देखने योग्य चीजें देख ली जाएं। लेकिन काफिले का बूढ़ा सरदार नहीं माना। उसका कहना था कि जन्मदिन का जशन बहुत करीब है। हमें जल्दी से जल्दी दिल्ली पहुंच जाना चाहिए। हां, वापसी पर यहां जितने दिन चाहें, रुक सकेंगे। यह बूढ़ा बड़ा तजुर्बेकार था और पहले कई बार भारत आ चुका था और फिर काफिले का सरदार भी था, इस लिए उसकी बात सभी को माननी पड़ी। माननी ही चाहिए थी। और यह तो सभी जानते थे कि जशन के मौके पर उनका माल तुरंत और अच्छे दामों पर बिक जाएगा। मत-लब यह कि काफिला बड़ी तेजी से मंजिल दर मंजिल दिल्ली पहुंचा और शहर के बाहर डेरा डाल दिया।

काफिला शाम को दिल्ली पहुंचा था। सभी लोग लम्बे सफर से बुरी तरह थके हुए थे। और फिर आज तो वे अपनी मंजिल तक पहुंच चुके थे। सो सारे खा-पीकर लम्बी तान-कर सो गए। सुबह उठे तो थकान दूर हो चुकी थी

और सभी ताज़ा दम थे। सभी लोग सुबह के कामों से निवट-कर और नहा-धोकर नमाज पढ़ने लगे। फिर उन्होंने शहर में जाने का निश्चय किया। इज्ज़तबेग भी अपने हमजोली व्यापारियों के साथ हंसता-बोलता शहर को चला लेकिन शहर के बड़े दरवाजे से घुसे तो जैसे दिमाग ही चक्कर खा गया। वह मन ही मन सोचने लगा—हे भगवान्! इस शहर को क्या हम जैसे लोगों ने ही बनाया है या कोई जादूगरी का कमाल है। चौड़ी साफ-सुथरी सड़क के दोनों ओर दुकानों की कतारें। देश-देश का माल करीने से सजा-संवरा हुआ था। मंदिरों और मस्जिदों के कलसे और मीनार सिर उठाए आसमान से बातें कर रहे थे। हर देश के आदमी और हर देश का माल यहां देखा जा सकता था। कहीं काबुल और कंधार के पठान अपनी बड़ी-बड़ी सलवारों से और कुल्लेदार लुंगियों से साफ पहचाने जाते थे। कहीं समरकंद और बुखारे के लोग थे। इन्हें पहचानते भी देर नहीं लगती। इनकी झक सफेद पगड़ियां और ढीला-ढाला जामा इन्हें दूर से अलग बता देता था। कहीं राजपूत सिपाही अपनी रोबदार दाढ़ियों और नुकीली कटी हुई मूंछें संवारे, कमर में खड़ग लटकाए सीधे तने हुए बातें करते चले जाते थे। भीड़ इतनी थी कि कंधे से कंधा टकराता था। राजधानी 'दिल्ली नई-नवेली दुल्हन की तरह सजी-

संवरी लगती थी। इज्ज़तबेग पहली ही बार वहां आया था। इसलिए हर एक चीज़ को ध्यान से देखता, रुक रुक जाता और साथियों से तरह-तरह के सवाल पूछता।

काफिले का बूढ़ा सरदार, इज्ज़तबेग और दूसरे सौदागरों को लेकर एक पंज-हज़ारी अमीर की सेवा में हाजिर हुआ। सभी व्यापारियों ने अपने-अपने माल के नमूने उसे दिखाए। नमूने देखने के बाद अमीर ने कहा कि मुझे पूरी-पूरी उमीद है कि यह सब माल खरीद लिया जाएगा। काफिले के सरदार ने प्रार्थना की—हजूर, हमारी यह बड़ी इच्छा है कि समारोह के अवसर पर किसी तरह जहांपनाह के दर्शन कर सकें। अमीर ने कहा—इस बारे में मैं आपसे कोई वायदा तो नहीं कर सकता। हां, मैं कोशिश करूंगा कि आपकी इच्छा पूरी हो सके।

ठीक दो दिन बाद पता चला कि सभी को तो नहीं, पर बड़े-बड़े पांच-छह व्यापारियों को समारोह के अवसर पर दरबार में शामिल होने की आज्ञा मिली है। क्योंकि इज्ज़तबेग का बाप बलख के माने हुए व्यापारियों में था। इसलिए दरबार में शामिल होने वाले पाँच-छह लोगों में उसका नाम भी था।

समारोह में अभी कई दिन बाकी थे। पर इज्ज़तबेग बड़ा उतावला हो रहा था। बीच के ये दिन उसने बड़ी

बेचैनी से काटे। दरबार में जाने के दिन उसने नहा-धोकर अपने सब से कीमती कपड़े पहने और दूसरे साथियों के साथ दरबार की ओर चल दिया। यह समारोह लाल किले में हो रहा था। इज्ज़तबेग ने लाल किले को देखा था पर भीतर जाने का अवसर उसे अभी तक नहीं मिला था। आज जब किले के दरवाज़े पर पहुंचा तो देखता क्या है कि किले की दीवार के साथ-साथ चारों ओर लोगों के ठठ के ठठ जमा हैं। फाटक के पास बढ़िया अरबी नस्ल के घोड़े, जिनपर सुनहरी काम की रेशमी झोलें पड़ी हैं, कतारों में सजे खड़े हैं। कुछ ही दूरी पर सुनहरी-रुपहली अमारियों से सजे-सजाए हाथी खड़े हैं। उनके गलों की घंटियां रुनझुन बज रही हैं। माथे पर तरह-तरह की चित्रकारी है। एक ओर पैदल फौज हथियारों से लैस तैयार खड़ी हैं। नौबत बज रही है। अमीर-उमराव, राजपूत सरदार, प्रजा के धनी-मानी लोग अपने बढ़िया से बढ़िया कपड़े पहने और कीमती से कीमती भेंटें लिए भीतर चले जा रहे हैं। दरवाज़े पर अन्दर जाने वालों की भीड़ लगी हुई है। एक-एक करके दरवाज़े से गुज़रना पड़ता है। इन सौदागरों को काफी देर तक यहां रुकना पड़ा। तब कहीं जाकर इनकी बारी आई। लेकिन किले के अन्दर कदम रखते ही एक बार फिर उनके होश-हवास जैसे खो गए। मीलों लम्बी किले की लाल पत्थर

की दीवार, इसपर संगमर्मर का हाशिया, बीच-बीच में बुर्जियां, यह सब तो बाहरी ढांचा था। भीतर का दीवाने-आम, दीवाने-खास, तख्ते-ताउस, जनानखाना और मोती मस्जिद तो अपनी मिसाल आप ही थे। वे एक-एक चीज़ को आंखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे। उनके चेहरों को देखने से ऐसा मालूम होता था जैसे कि जो कुछ देख रहे हैं, उसपर उन्हें भरोसा न हो, अपनी ही आंखों पर। आखिर धका-पेल में वे दीवाने-आम के सामने पहुंचे। यहां दोनों ओर घुड़सवार पहरा दे रहे थे। उनके आगे बादशाह के खास सिपाही (अंगरक्षक) थे। सिपाहियों के बीचों-बीच एक चांदी का कटहरा। इससेकोई पच्चीस-तीस कदम आगे एक और चांदी का कटहरा था। यहां फिर सिपाही खड़े थे। इनके हाथों में चमचमाती नंगी तलवारें थीं। और हिलना-डुलना तो दर-किनार, वे पलक तक नहीं झपकते थे। यों लगता था जैसे पत्थर की मूर्तियाँ हों। इनके बाद छोटे हाकिम थे। फिर बड़े हाकिम, अमीर-जागीरदार और सूबेदार थे। और आगे वज़ीर, राजे-महाराजे और शाहजादे थे। यहां एक और चांदी का कटहरा था। आगे एक शामियाना था। इसमें सोने-चांदी की कुर्सियां रखी थीं। शामियाने के साथ तीन सीढ़ियां ऊंचे चबूतरे पर बादशाह का तख्ते-ताउस था। इस तख्त के दोनों ओर जवाहरात

के बने हुए दो मोर थे। चारों तरफ मोतियों की झालरों वाले मखमली पर्दे लटक रहे थे। नीचे कीमती ईरानी कालीन बिछे थे।

भीतर जाने वाले लोगों को जगह-जगह अपने पहचान-पत्र दिखाने पड़ते थे। तभी वे आगे जा सकते थे। इज़्ज़त-बेग और उसके साथी दरबार में तीन जगह झुककर तसलीम बजा लाए और भेंट दिखाकर, आंखें झुकाए उल्टे पांव पीछे हटे। सब को खिलअत मिली पर दरबार के रोब-दाब के कारण बेचारे बेहद घबरा रहे थे। डर के मारे उनका बुरा हाल था। चेहरों पर हवाइयां उड़ रही थीं। दरबार समाप्त हुआ तो शाम को डेरे पर लौटे। दूसरे दिन सभी को उनके माल के दाम मिल गए। इसके बाद वे कुछ और दिन दिल्ली में घूमते-फिरते रहे। फिर सबने वापिस लौटने का निश्चय किया।

आते समय तो वे बहुत जल्दी में थे, इसलिए रास्ते में कहीं नहीं ठहर सके थे—रास्ते के किसी भी शहर को देख नहीं सके थे। पर अब किसीको कोई जल्दी नहीं थी। इस लिए जगह-जगह ठहरते, नई-नई चीज़ें देखते वे धीरे-धीरे लौटने लगे। लाहौर पहुंचकर तीन-चार दिन तक रुके रहे, और सारा शहर खूब जी भरकर देखा। यहां से चले तो

कुछ दिनों बाद गुजरात[1] पहुंचे। गुजरात तब बहुत बड़ा शहर था। उत्तर भारत के प्रसिद्ध शहरों में उसकी गिनती थी। इन परदेसी व्यापारियों को यह शहर बहुत पसंद आया। वे दो-तीन दिन के लिए यहां रुक गये। उन्हें यहां ठहरे अभी एक ही दिन हुआ था कि इज्जतबेग का एक नौकर जब शाम को लौटकर आया तो अपने मालिक से कहने लगा —मालिक! इस शहर में तुल्ला नाम का एक कुम्हार है। अच्छे कुम्हारों में उसकी गिनती है। उसकी एक बेटी है। बिल्कुल परी जैसी। कहते हैं कि उस जैसी खूबसूरत दूसरी लड़की शहर भर में नहीं है। इज्जतबेग ने नौकर से पूछा— क्या नाम है उस लड़की का? नौकर ने कहा—सोहणी। मालिक, कितना प्यारा नाम है! है न प्यारा? यहां की पंजाबी जबान में सोहणी का अर्थ होता है खूबसूरत, हसीं।

ये बातें सुनीं तो इज्जतबेग का मन हुआ कि उस लड़की को एक बार जरूर देखा जाए। दूसरे दिन सुबह ही उसने नौकर को साथ लिया और कुम्हार के घर पहुंचा। मिट्टी के बर्तन बनाने-बेचने में वह अपने पिता का हाथ बंटाती थी। इसलिए उसे देखने का मौका भी मिल गया। बर्तन खरीदने के बहाने इज्जतबेग देर तक सोहणी को देखता रहा, जो भरकर देखता रहा। उस के रूप-रङ्ग

१. भारत-विभाजन के पश्चात् यह शहर पाकिस्तान में चला गया है।

यौवन ने इज्ज़तबेग पर कुछ ऐसा जादू डाल दिया कि वह उसीका होकर रह गया। आखिर वापस डेरे पर आया। लेकिन दिल उसीमें अटका हुआ था।

बाकी दिन उसे पहाड़-सा लगा और बड़ी बेचैनी से काटा। फिर रात हुई। वह तारे गिनते आंखों में गुज़र गई। सुबह ही फिर बर्तन खरीदने के बहाने तुल्ला कुम्हार के यहां जा पहुंचा। और अब रोज यह सिलसिला जारी रहा। मोल-भाव करने के बहाने सोहणी से दो-चार बातें करने का मौका उसे मिल जाता। वह एक-एक बर्तन को ठोक बजाकर देखता। उसमें कोई छोटा-मोटा नुक्स निकालता और उसे बदलने को कहता। असल बात तो यह थी कि वह ज़्यादा से ज़्यादा समय सोहणी के पास रहना चाहता था। उसे देखना, उससे बातें करना चाहता था।

यों ही चार-पांच दिन बीत गए। अब काफिले ने चलने का इरादा किया। लेकिन इज्ज़तबेग का मन तो सोहणी में अटका हुआ था। वह कैसे जाता! उसने कह दिया—मैं अभी कुछ दिन यहीं ठहरूंगा। मुझे यह शहर बहुत पसंद है। आप जाइए। मैं किसी दूसरे काफिले के साथ आ जाऊंगा। और काफिला अपनी राह चल दिया। और इज्ज़तबेग अपने नौकरों-चाकरों समेत वहीं रह गया। वैसे तो उसके पास रुपए-पैसे की कमी नहीं थी पर रोज़-

ब-रोज बर्तन खरीदने में काफी रुपए खर्च हो जाते थे। इस के साथ आठ-दस नौकरों के खाने-पीने का खर्च। एक-दो पुराने नौकरों ने बहुत समझाया—मालिक यह आप क्या कर रहे हैं ? परदेस का मामला है। किसीसे हमारी जान-पहचान भी नहीं है। अगर यही हाल रहा तो अपने देश कैसे पहुंचेंगे ? और रुपए कहां से आएंगे ? यहां आमदनी का तो कोई ज़रिया है नहीं। खर्च ही खर्च है। पर प्रेम-दीवाने इज्जतबेग पर इन बातों का कुछ भी तो असर नहीं हुआ। कुछ समय बाद सारा रुपया-पैसा समाप्त हो गया। नौकर पहले ही उकता चुके थे। वे एक-एक करके खिसकने लगे। दो-तीन पुराने नौकर रह गए थे। पर जब भूखों मरने की नौबत आई तो उन बेचारों की स्वामीभक्ति भी जवाब दे गई। और फिर उन्हें अपने मालिक के काम में कोई तुक भी तो नज़र नहीं आती थी। अब इज्जतबेग गुजरात में अकेला रह गया।

३

जब इज्जतबेग ने सोचा कि अब तो सोहणी से मिलने का कोई बहाना न रहा तो अब तक खरीदे हुए मिट्टी के बर्तनों की दुकान खोल ली। बर्तनों पर वह अब तक हाजरों रुपये खर्च कर चुका था। अगर ढंग से दुकान चलाता तो काफी कमा

लेता। पर यहां तो कुछ बात ही दूसरी थी। उसे कोई कमाई तो करनी नहीं थी। रोज़ जितनी क़ीमत के बर्तन बिकते, उतने के वह और खरीद लाता। इस बहाने उसे फिर सोहणी को देखने का अवसर मिलने लगा। वह बर्तनों का धन्धा कमाई करने के लिए नहीं कर रहा था। इसलिए उसकी दुकान पर जो भी गाहक आता उसे वह कभी खाली न जाने देता और औने-पौने दामों में ही चीज़ दे देता। ऐसा कारोबार कैसे चलता और कितने दिनों तक चलता! कुछ ही दिनों में दुकान खाली हो गई। जेब तो आगे ही खाली थी।

अब फिर उसके सामने कोई रास्ता नहीं था। आखिर एक दिन वह तुल्ला कुम्हार के पास पहुंचा। कहने लगा—मैंने तो बर्तनों का धन्धा यह सोचकर किया था कि इसमें कुछ मिलेगा। पर मैं तो अपना सभी कुछ गंवा बैठा। अब तो मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। मेरा देश यहां से सैंकड़ों कोस दूर है। अब वहां भी नहीं जा सकता हूं। रास्ते का खर्च कहां से लाऊं। आपके सिवाय मेरी किसी से जान-पहचान भी नहीं है। अगर आप मुझे अपने पास नौकर रख लें तो भूखों तो नहीं मरूंगा। और आपको ज़िन्दगी भर याद रखूंगा।

तुल्ला कुम्हार को उसका पहले वाला ठाट-बाट याद

था। वह जानता था कि यह तो रईसज़ादा है। और फिर रोटियां देकर नौकर रखने का सौदा कोई महंगा सौदा नहीं था। उसे इस बेचारे पर तरस आ गया और उसने उसे नौकर रखना मान लिया। पहले कुछ दिन तो वह दुकान के काम-काज में तुल्ला की मदद करता रहा फिर उसे भैंसें चराने का काम सौंपा गया।

अभी तक इज़्ज़तबेग को सोहणी से कुछ ज़्यादा बात-चीत करने का मौका कभी नहीं मिला था। बस दर्शन-मेला ही था। पर इज़्ज़तबेग के मन की बात वह जान गई थी। प्रेमियों के दिल की धड़कन छिपी कब है! वह उसके रंग-ढंग से जान गई थी कि यह सब कुछ मेरे लिए हुआ है और हो रहा है। धीरे-धीरे उसके दिल में भी इज़्ज़तबेग के लिए प्रेम पैदा हो गया। और पहले वाली झिझक की दूरी भी कम होती गई। आंखों ही आंखों में बातें होने लगीं। नजरें दिल का सन्देश लातीं और ले जातीं। कुछ दिन यही सिल-सिला जारी रहा। इज़्ज़तबेग सोहणी की ओर कुछ इस अन्दाज़ से देखता जैसे कह रहा हो, यह ज़िन्दगी तेरे ही हाथ है। रख ले या खत्म कर दे। इन प्रेम-प्यासी आंखों का ताव सोहणी न ला सकी। जब वह उसे इस तरह देखता तो उसका मन पिघल जाता। इज़्ज़तबेग जान गया कि आग दोनों के दिलों में भीतर ही भीतर सुलग रही है। और अब

लपटें उठना ही चाहती हैं। अब कुछ-कुछ बातचीत भी होने लगी।

इज़्ज़तबेग ने यहां रहकर कामचलाऊ तौर पर पंजाबी ज़बान सीख ली थी। वह अरबी-फारसी मिली-जुली पंजाबी बोलता था। लोगों को उसकी यह खिचड़ी ज़बान बहुत अच्छी लगती। पर वह दिनों-दिन अच्छी पंजाबी सीखने लगा था। यहां उसका नाम-धाम कोई नहीं जानता था। पंजाबी में भैंस को मेंही कहते हैं और वह भैंस चराता था इसलिए उसका नाम महीवाल (भैंसों वाला) पड़ गया था। लोग उसे इसी नाम से जानते थे।

अब चोरी-छिपे सोहणी और महीवाल की भेंट होने लगी। प्रेम का पौधा आंसुओं से सींचा जाकर दिनों-दिन बढ़ने लगा। महीवाल को कतई आशा नहीं थी कि तुल्ला सोहणी का ब्याह उससे कर देगा। क्योंकि कुम्हार जात-बरादरी के मामलों में बड़े कट्टर होते हैं। पर प्रेम तो इन सबको कभी नहीं सोचता। उसने मन ही मन निश्चय किया—अगर ब्याह करूंगा तो सोहणी से, नहीं तो उमर भर कुंआरा ही रहूंगा। किसी दूसरी औरत की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखूंगा। सोहणी भी इसी तरह का कौल-करार कर चुकी थी। उसने कहा था—जब तक जीवित हूं, तुम्हारी हूं, तुम्हारी होकर रहूंगी। जब कभी मिल बैठने

का मौका मिलता, दोनों अपने कौल-करार दोहराते। पर यह सोचकर उनका दिल बैठ-बैठ जाता कि जात-बरादरी के कारण हमारा ब्याह नहीं हो सकता।

पर इश्क कभी छिपा नहीं रहता। लोगों को पहले ही शक हो चला था कि इस व्यापारी के बेटे ने अपना सब कुछ लुटा दिया और अब कुम्हार की नौकरी कर रहा है तो इसमें कोई भेद की बात है। संयोग की बात कि पड़ौसी ने सोहणी और महीवाल को नदी के किनारे घुल-घुलकर बातें करते देख लिया। बस फिर क्या था! जंगल की आग की तरह यह बात सारे मुहल्ले में फैल गई। लोग कानाफूसी करने लगे। सोहणी या महीवाल जिस ओर भी निकलते, लोग उंगलियां उठाते और तरह-तरह की बातें करते। सोहणी के पिता तुल्ला के कान तक भी ये बातें आ पहुंचीं। वह गुस्से में लाल-पीला हो उठा। उसने महीवाल को नौकरी से हटा दिया। साथ ही उसने दूसरा काम यह किया कि बरादरी के एक नौजवान धोबी से सोहणी का रिश्ता पक्का कर दिया और ब्याह की तैयारियां करने लगा। सोहणी बहुत रोई-धोई पर किसीने उसकी एक न सुनी। आखिर एक दिन बरात आई, बाजे-गाजे बजे, मौलवी ने निकाह पढ़ा, और रोती-चीखती दुल्हन डोली में ससुराल के घर पहुंची।

वह ससुराल के घर कुछ दिन चुपचाप, बिना कुछ

खाये-पिये बिस्तर पर सिर से पांव तक कपड़ा ओढ़े पड़ी रही। घर के लोगों ने समझा कि बहू माता-पिता के घर से पहली बार आई है, इसलिए बिछोह के दुःख से दुखी है। आठ-दस दिन में उसका मन लग जाएगा और मायके की याद धीरे-धीरे भूल जाएगी। पर जब कई दिन बीत जाने पर भी उसकी हालत वैसी की वैसी बनी रही तो तरह-तरह की बातें होने लगीं। संयोग की बात, जिस दिन से सोहणी की डोली इस घर में आई थी, उसी दिन से उसका पति बीमार रहने लगा था। वैसे बाहर से कोई बीमारी मालूम नहीं होती थी। भीतर ही भीतर से जैसे घुन ने उसे खाकर खोखला कर दिया हो। वह सूखकर कांटा हो गया। पति-पत्नी में बातचीत तक नहीं होती थी। दोनों एक-दूसरे से खिंचे-खिंचे और अलग-अलग रहते थे। सोहणी के सास-ससुर और पास-पड़ोस के सभी लोग कहते कि जिस दिन से बहू इस घर में आई है, उसी दिन से पति को बीमारी लग गई है। यह तो कुलक्षणी है। अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियां भी घर-घाट जहां पर मिलतीं, यही चर्चा छिड़ जाती। वे कहतीं, जिस दिन से यह मनहूस घर में घुसी है, घर की बरकत ही उठ गई है। सबसे ज्यादा ताने तो सोहणी की ननद उसे देती। उसकी जली-कटी बातों से तो सोहणी का कलेजा ही छलनी हो गया था।

उधर अभागे महीवाल की दशा देखिए। तुल्ला कुम्हार के घर से निकाला जाने के बाद वह कुछ दिन तो इधर-उधर भटकता रहा। पर कहीं भी मन को शान्ति न मिली। बीते दिनों की बातें याद करके उसका मन भर आता। आंखें छलक पड़तीं। सोचता—सोचा था क्या, क्या हो गया। जब उसे पता चला कि सोहणी का ब्याह हो गया तो उसकी रही-सही आशा भी जाती रही। उसकी आंखों के आगे अन्धेरा छा गया और धरती घूमती मालूम हुई। जब कुछ संभला तो आपस के वायदों को याद कर-कर सोचने लगा—क्या सोहणी उन कौल-करारों को भूल गई। इतनी जल्दी भूल गई। या क्या वह मुझसे झूठे वायदे करती थी। 'वह भूल गई' इसकी गवाही उसका मन नहीं देता था। और वह फिर बेचैन हो उठता। क्या करूं, क्या न करूं, कहां जाऊं, उसे कैसे पाऊं, कुछ भी तो उसे नहीं सूझता। आगे अंधेरा, पीछे अंधेरा; वह अपने चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा देखता।

एक दिन यों ही भटकते उसे सोहणी की एक सहेली मिल गई। वह इन दोनों के प्रेम की बात को खूब जानती थी। महीवाल ने बड़ी मिन्नत-समाजत के बाद उसे राज़ी कर लिया कि वह उसका पत्र सोहणी तक पहुंचा दे। उस ने पत्र में तरह-तरह के उलाहने लिखे। सहेली ने पत्र

सोहणी के पास पहुंचा दिया। सोहणी ने जवाब में लिखा—मैं वही हूं जो पहले थी। जिसकी तब थी, उसकी अब भी हूं। पर हूं मजबूर। कैसे मिलूं। मेरी देह तो यहां है पर मन सदा तुम्हारे पास ही रहता है।—उसे चैन कहां! यह पत्र पढ़ा तो महीवाल की जान में जान आई। दूसरे दिन उसने फकीरों का भेस बनाया और सोहणी के दरवाज़े पर जा पहुंचा। सोहणी की सास घर के काम-काज में लगी हुई थी। फकीर की आवाज़ सुनी तो बहू को कहा—बहू! जा, फकीर को मुट्ठी भर आटा दे आ। सोहणी आटा लेकर दरवाज़े पर पहुंची तो फकीर के भेस में खड़े महीवाल को पहचान गई। क्षण भर तो यह दशा रही जैसे पत्थर की दो मूर्तियां आमने-सामने खड़ी हों। पर सोहणी जल्दी ही संभल गई। फिर बोली—तुम यहां क्यों चले आए? यहां का तो बच्चा-बच्चा तुम्हारे खून का प्यासा हो रहा है। अब देर न करो। जल्दी से नदी के पार चले जाओ। मैं रात को तुम से मिलूंगी। यह कहकर आटा उसने फकीर की झोली में डाला और जल्दी से घरके भीतर चली गई।

आधी रात को जब घर के सब लोग गहरी नींद में सो चुके थे, सोहणी दबे पांव उठी। एक घड़ा लिया और नदी की ओर चल दी। घड़े के सहारे तैरकर उसने नदी पार की। महीवाल उसके कहने के अनुसार उसका इन्तज़ार

कर रहा था। सोहणी को देखते ही उसका दिल खिल उठा। देर तक दोनों बैठकर अपने दुःख-सुख की बातें करते रहे। जब कोई एक पहर रात बाकी रह गई तो सोहणी घर को वापस चली। वह फिर घड़े के सहारे तैर इस ओर पहुंची और घड़ा नदी किनारे की झाड़ियों में छिपा दिया। दबे पांव बिल्ली की तरह घर में घुसी और अपने बिस्तर पर सो रही।

इसी तरह ये दोनों काफी समय तक मिलते रहे और किसीको कुछ पता न चला। पर एक दिन जब सोहणी अपने बिस्तर से उठी तो उसके पांवों की आहट पाकर उसकी ननद की नींद खुल गई। पर वह उसी तरह लेटी रही और देखने लगी कि यह क्या करती है। उसने देखा कि भाभी घर से बाहर निकल रही है तो वह भी उठी और पीछा करने लगी। सोहणी ने नदी के किनारे पहुंचकर झाड़ियों में छिपाया घड़ा निकाला और नदी में कूद पड़ी। वह नदी के किनारे झाड़ियों की ओट में छिपी देखती रही। गुस्से में उसने अपना होंठ काट लिया औ कांपने लगी। उसने मन में कुछ ऐसा निश्चय किया जो सोहणी के लिए खतरनाक था।

जब उसने देखा कि सोहणी तैरकर वापस आ रही है तो उससे पहले ही घर लौट आई और बिस्तर पर सो गई।

सुबह उठकर ननद-भावज रोज़ की तरह ही घर का काम-काज करने लगीं। उसकी ननद ने न तो अपने माता-पिता को कुछ बताया और न भाई को।

आषाढ़ का महीना समाप्त हो रहा था। सावन शुरू होने वाला था। सारे वातावरण में उमस थी। घनी काली बदलियों से आकाश ढका हुआ था। पुरवैया हवा बह रही थी। बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की कौंध से मालूम होता था कि अभी मूसलाधार वर्षा होने वाली है। नदी-नालों में बाढ़ का पानी ज़ोर मार रहा था। शाम को सोहणी की ननद बिना किसीसे कहे-सुने घर से निकली और नदी के किनारे पहुंची। वह अपने साथ एक कच्चा घड़ा ले गई थी। उसने सोहणी का पक्का घड़ा झाड़ियों से निकाला और उसे तोड़-फोड़कर उसके ठीकरे नदी में फेंक दिये। जो कच्चा घड़ा वह अपने साथ ले गई थी, वह उसने पहले वाले घड़े की जगह रख दिया। यह सब कर चुकने के बाद उसके चेहरे पर एक ऐसी कुटिल मुस्कान दौड़ गई, जिसमें अपने किये पर संतोष तो था ही, किसी के लिए घृणा भी थी।

सोहणी आधी रात को उठी। संभल-संभलकर कदम रखती घर से निकली। बरसाती रात, घना डरावना अंधेरा चारों ओर छाया हुआ था। हाथ को हाथ नहीं दिखाई देता था। बाढ़ भरी नदी के पानी का शोर रात के डरावनेपन

को और भी बढ़ा रहा था। चांद-तारे घने बादलों की ओट में छिपे दुबके पड़े थे। तेजी से उड़ते बादलों के बीच से कभी कोई तारा झांककर एक नज़र धरती की ओर देख लेता। पर फिर उसी क्षण जैसे उस घुप अंधेरे से डरकर फिर छिप जाता। दिन से बराबर वर्षा हो रही थी और बीच-बीच में बड़े ज़ोर का झक्कड़ चलने लगता। सायं-सायं करती हवा जैसे सीटियां बजा रही थी। बिजली की कड़क-कौंध के साथ घर-खेत और वृक्ष ज़रा-से दिख जाते और फिर दुगुना-चौगुना अंधेरा आंखों के आगे छा जाता। सोहणी चलते-चलते रुकी। उसने सोचा—आज बाढ़ के कारण नदी आर-पार हो रही होगी। कैसे मैं उसे पार करूंगी। फिर सोचती—न गई तो महीवाल सारी रात जागता मेरी बाट देखता रहेगा और पता नहीं क्या सोचेगा! वह फिर रास्ते पर बढ़ी।

अंधेरे पाख की काली बरसाती रात, ऊपर से वर्षा, तेज़ आंधी के झोंके—वह कुछ डरी, लौटने को हुई लेकिन नहीं लौटी। उसे फिर महीवाल का ध्यान आया। और उसके कदम फिर तेजी से बढ़ने लगे।

नदी-किनारे पहुंचकर उसने झाड़ियों से घड़ा निकाला। हाथों ने उसे छूते ही बता दिया कि यह वह घड़ा नहीं है। यह दूसरा घड़ा है। कच्चा घड़ा। तो क्या मेरे छिपकर

महीवाल से मिलने की बात घरवालों को मालूम हो गई है। उसे अपने पांव तले की ज़मीन सरकती मालूम हुई। पल भर वह सिर झुकाए यों ही खड़ी रही। सामने अपनी मौत खड़ी दिखाई दे रही थी। फिर उसने झटके के साथ सिर उठाया। जैसे मन की कमज़ोरी को झटक दिया हो। उसने अपने से कहा—प्रेम के रास्ते पर कदम रखा है तो अब पीछे हटना बेकार है। यह कहकर वह उफनती नदी में कूद पड़ी। पर कच्चे घड़े की क्या बिसात थी कि वह बाढ़ के पानी की मार का सामना करता! क्षण भर में टूट-फूटकर बह गया।

महीवाल नदी के किनारे खड़ा सोच रहा था कि आज सोहणी कैसे आएगी। आज तो बड़ी भयंकर बाढ़ आई हुई है। उसे इतने में सोहणी की पुकार सुनाई दी। वह बिना कुछ सोचे नदी में कूद पड़ा और तेज़ी से पानी को काटता डूबती सोहणी के पास जा पहुंचा। पर तभी एक ज़ोरदार लहर आई और उन दोनों को दबाती निकल गई।

धरती जिन प्रेमियों को चिर-मिलन का आश्वासन न दे सकी थी, जल की तरल तरंगों ने उन्हें अपनी गोद में भरकर सदा के लिए मिला दिया। उन्हें सदा के लिए अमर कर दिया।

मिर्ज़ा-साहिबां

पुराने समय की बात है। रावी नदी के किनारे खरल कबीले के लोगों का शासन था। इस कबीले की बस्तियां नदी के किनारे-किनारे दोनों ओर फैली हुई थीं। खरल कबीले के लोग बड़े शूरवीर और लड़ाई के दांव-पेच जानने वाले थे। लड़ाई के मैदान में जान की परवाह किये बगैर इस तरह लड़ते थे कि बड़ी-बड़ी फौजें मुंह मोड़कर भाग खड़ी होती थीं। कबीले के सरदार का नाम था इब्राहीम-खां। बहादुर खरल केवल अपने इस सरदार की आज्ञा मानते थे, दूसरे किसीकी नहीं।

इब्राहीमखां का एक भतीजा था। नाम था मिर्ज़ाखां। उसके बांकेपन और शूरवीरता की कहानियां दूर-दूर तक फैली हुई थीं। शेर की तरह चौड़ी-चकली छाती, भरा हुआ सुडौल शरीर, लम्बा-तड़ंगा कद, कड़कती आवाज़, गोरा-चिट्टा चेहरा जो कि सैनिक का जीवन बिताने के कारण ताम्बई-सा हो गया था। मिर्ज़ाखां को सैर-सपाटे और शिकार के सिवा दूसरा कोई काम ही नहीं था। वह प्रतिदिन अपनी तेज़-तर्रार घोड़ी पर सवार होकर निकल जाता और अपने शौक पूरे करता।

एक दिन वह सवेरे ही घोड़ी पर सवार होकर घर से निकल पड़ा। और शिकार की खोज में अपने इलाके की हद निकलकर झंग-स्याल के समीप जा पहुंचा। गर्मियों के दिन थे और दोपहर का समय। सूरज आग बरसा रहा था। लू के झोंके शरीर को झुलस रहे थे। संयोग से झंग के सरदार खेवाखां की बेटी साहिबां नदी के किनारे एक घनी छांह वाले पेड़ के नीचे बैठी अपनी सहेलियों से हंस-बोल रही थी। जब मिर्ज़ाखां की नज़र उसपर पड़ी तो वह अपने तन-बदन की सुध भूल बैठा।

साहिबां अभी-अभी नदी से नहाकर आई थी। उसके घने-काले लम्बे बाल कन्धों पर पड़े थे और उनसे पानी की बूंदें टपक रही थीं। उसकी आवाज़ में कोयल की कूक थी। आंखों में जवानी का जादू और गोरा फूल-सा कोमल चेहरा तेज़ धूप में तमतमाया हुआ था। जब वह बात करती तो उसके गुलाबी होंठ ऐसे हिलते जैसे गुलाब की पंखुड़ियां हवा में कांप रही हों। मिर्ज़ाखां को धूप में खड़ा देखकर उसने पुछवाया कि तुम कौन हो और इस तरह धूप में क्यों खड़े हो? किसी पेड़ की छांह में क्यों नहीं जा बैठते? मिर्ज़ाखां ने कहला भेजा कि मैं एक राही हूं। हो सके तो मुझे पानी पिला दो। इसके उत्तर में साहिबां ने फिर कहला भेजा कि यह झंग-स्याल का इलाका है। इसीकी मिट्टी ने

हीर को सिरजा था और यहीं रांझे ने प्रेम-दीवाना बनकर अपना सारा जीवन बिता दिया था। यहां के पानी में प्रेम की तासीर रची-बसी हुई है, इसलिए मुझे डर है कि तुम्हें यहां का पानी रास नहीं आएगा। यह सुनकर मिर्जाखां ने कहला भेजा—भाग्य में यही लिखा होगा तो इसे कौन टाल सकता है? यह जवाब सुना तो साहिबां ने एक सहेली के हाथ कटोरा भरकर पानी भेज दिया। किन्तु उसने कटोरा ऐसे पकड़ रखा था कि हाथ का अंगूठा पानी में डूबा हुआ था। मिर्जाखां ने देखकर कहा—मैं तो यह पानी नहीं पिऊंगा। पिलाना है तो अपने-आप पिलाओ। साहिबां ने दूसरी सहेली के हाथ पानी भेजा। अब की बार उसकी सहेली कटोरे को हथेली पर रखकर ले गई। पर हवा के तेज झोंके से उसमें कुछ धूल और तिनके गिर गए। मिर्जा-खां ने फिर पानी पीने से इन्कार कर दिया और कहला भेजा कि मैंने तो पहले कहला भेजा था कि अपने हाथ से पिलाओ। अबकी भी यह पानी पीने योग्य नहीं है। जब साहिबां ने देखा कि यह नौजवान मानता ही नहीं है तो अपने-आप पानी लेकर गई। और पानी पिलाते दोनों ने एक-दूसरे को अच्छी तरह देख लिया। इसके बाद मिर्जा-खां घोड़ी से उतर पड़ा और दोनों जंड के एक पेड़ के नीचे बैठकर बातें करने लगे।

मिर्ज़ाखां को तो पहली ही नज़र में साहिबां के प्रेम ने पीड़ित कर दिया था। उससे बातें करने के बाद साहिबां के मन में भी उसके लिए प्रेम पैदा हो गया। और थोड़ी देर की बातचीत के बाद ही दोनों का यह हाल था कि जब मिर्ज़ाखां वहां से चलने लगा तो दोनों की आंखें डबडबा आईं। वे प्रेम के पौधे को आंसुओं से सींच-सींचकर बढ़ाने लगे।

कुछ चोरी-चुपके यह प्रेम-मिलन होता रहा। दोनों एक-दूसरे की ओर खिंचते गए। उन्होंने अपने दिल आपस में बदल लिये—वे अपना दिल एक-दूसरे को दे बैठे। एक बार तो मिर्ज़ाखां साहिबां से उसके घर पर आकर मिला। क्योंकि साहिबां की मां दूर के सम्बन्धियों में मिर्ज़ाखां की मौसी होती थी। किन्तु मिर्ज़ा की प्रेम-प्यासी नज़रों, ठण्डी आहों और दूसरे हाव-भावों से साहिबां की मां ने जान लिया कि इस सरल युवक का यहां इस प्रकार आने का कोई विशेष कारण अवश्य है। इसलिए उसने साहिबां को एकान्त में ले जाकर समझा दिया कि बेटी तेरी मंगनी चंदन कबीले के सरदार अताखां से हो चुकी है। वह बड़ा सजीला नौजवान है। इसलिए तेरा मिर्ज़ाखां के साथ मिलना उचित नहीं। इससे कह दो कि यहां से चला जाए और फिर कभी इस घर में पांव न रखे।

साहिबां ने मां की आज्ञा मिर्ज़ाखां को कह सुनाई। वह झट वहां से जाने के लिए तैयार हो गया। जाते-जाते वह साहिबां से कहता गया—ठीक है, मैं चला जाता हूं। आज से दसवें दिन मैं फिर आऊंगा और जैसे भी होगा तुमसे मिलने की कोशिश करूंगा। ज्यों ही वह घर से निकला, साहिबां छत पर चढ़कर प्यासी आंखों से उसकी ओर देखती रही और जब तक वह ओझल नहीं हो गया, छत पर खड़ी रही।

ठीक दसवें दिन की बात है। साहिबां ने मां से सिर पर मलने के लिए तेल मांगा। शायद उसके सिर में दर्द हो रहा था। घर में तेल नहीं था। साहिबां तेल लेने खुद ही निकल पड़ी। उन दिनों झंग एक छोटा-सा कसबा था। इनी गिनी दुकानें थीं। और कसबे में बिखरी हुई थीं। मिर्ज़ा-खां जाते समय दसवें दिन आने का वचन दे गया था। वचन के अनुसार आज वह साहिबां के घर के पास घूम रहा था। उसने सारी बातें सुन ली थीं। वह तुरन्त पास की दुकान की ओर भागा और दुकानदार से कहने लगा—क्यों भाई, दिनभर में कितनी बिक्री हो जाती है? दुकानदार ने उत्तर दिया—यही कोई पांच-छह रुपए। मिर्ज़ाखां ने कहा—यह लो, मैं तुम्हें दस रुपए देता हूं। और आज के दिन के लिए दुकान पर मुझे बैठने दो। मैं शाम को दुकान तुम्हारे हवाले कर

दूंगा और इसमें से कोई चीज़ नहीं लूंगा। जो बिक्री होगी उसके रुपए भी तुम्हारे ही होंगे। दुकानदार ने स्वीकार कर लिया। मिर्ज़ा ने दस रुपए गिन दिये और दुकानदार की गद्दी पर जा बैठा।

इधर जब साहिबां दुकान पर पहुंची तो देखती है कि दुकानदार की जगह मिर्ज़ाखां बैठा हुआ है। यह देखकर उसके मन की कली खिल उठी। दोनों देर तक प्रेम-बतियां करते रहे। जब अंधेरा घिरने लगा और दीपक जलाने का समय हो गया तो यह प्रेम-मिलन समाप्त हुआ और साहिबां घर लौटी। देरी से लौटने के कारण उसकी मां बहुत नाराज़ हुई। कहने लगी—बेटी, अब तू बच्ची नहीं है, जो जहां चाहे आए-जाए और देर तक घर से बाहर रहे। जवान बेटियां यों नहीं घूमा करतीं। कहां थी तू अब तक? मैं भी तो जानूं।

पहले उसने यों ही मां को टालना चाहा पर जब मां ने बहुत ज़िद की तो साहिबां ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया—मां, मैं तेल लेने गई थी, पर तेल के बदले प्रेम खरीद लाई हूं। सच तो यह है कि मुझे रास्ते में मिर्ज़ा-खां मिल गया था। मां ने सुना तो गुस्से में लाल-पीली होने लगी।

पहले तो डराया-धमकाया, बाद में जब गुस्सा उतर

गया तो लाड़-दुलार से समझाने लगी—तुम गलत रास्ते पर जा रही हो। पर साहिबां तो अपने मन-मन्दिर में किसी देवता की मूर्ति को बिठा चुकी थी! उसपर समझाने-बूझाने का कतई असर नहीं हुआ। न ही डराने धमकाने का।

२

इधर साहिबां मिर्ज़ाखां के विरह में तड़प रही थी और इधर मिर्ज़ाखां सहिबां से मिलने के लिए बेचैन था। दोनों के दिलों में एक-जैसी विरह की आग जल रही थी। दिन बीतते गए और सावन का मनभावन महीना आ गया। काली-काली बदलियां आसमान में उड़ने-तैरने लगीं। धरती पर हरी-भरी घास का फर्श बिछ गया। आम के पेड़ों पर कोयल कूकने लगी जिसे सुनकर प्रेमियों के दिलों में हूक उठने लगी। जगह-जगह झूले पड़ गए और अल्हड़ कुंवारियां और युवतियां गा-गाकर झूलने और झूल-झूलकर गाने लगीं। वे एक-दूसरी से छेड़-छाड़ करतीं, गुदगुदातीं और भाग जातीं। पिछले कुछ वर्षों से साहिबां अपनी सहेलियों के साथ सावन में, नगर के बाहर के अपने एक बाग में चली जाती थी और वहां झूला झूलना, गाना-नाचना अठखेलियां करना यही रोज़ का काम होता। इस बार जब उसने पिता से वहां जाने कि बात कही तो उसने कुछ

टालमटोल करनी चाही। पर फिर सोचा कि यह तो हर साल की बात है। कोई नई बात नहीं है।

पिता की आज्ञा लेकर साहिबां उसी समय सहेलियों के साथ बाग में चली गई। ऊंचे-ऊंचे वृक्षों की टहनियों में झूले डाल दिये गए और तरह-तरह के पकवान बनने लगे। मिर्ज़ाखां को पता लग गया था कि साहिबां आजकल बाग में है। वह चुपचाप बाग में चला आया। साहिबां की सखियां-सहेलियां उसे देखकर दंग रह गईं। वह सीधा साहिबां के पास पहुंचा। साहिबां शायद पहले से ही उसके आने की बात जानती थी।

यों ही कुछ दिन निकल गए। अब घर से साहिबां को बुलावा आ गया। अब तो मजबूर होकर मिर्ज़ाखां को भी अपने घर लौट जाना पड़ा। इस बार दो प्रेमी कुछ दिन इकट्ठे रहे थे और एक-दूसरे को आगे से ज़्यादा चाहने लगे थे। यही कारण था कि बिछुड़ते समय उनकी हालत बड़ी अजीब थी।

मिर्ज़ाखां साहिबां के वियोग में बिल्कुल दीवाना हो गया था। उसने अपने गहरे दोस्तों से इस बात की चर्चा भी की कि मैं खेवाखां की बेटी साहिबां से ब्याह करूंगा। वह मेरे दिल की रानी बन चुकी है। पर उन्होंने इस बात को यों ही हंसी में उड़ा दिया। वे जानते थे कि साहिबां

की सगाई अताखां से हो चुकी है। और अगर मिर्ज़ाखां ने अपनी ज़िद न छोड़ी तो गड़बड़ होके रहेगी। कुछ दिनों बाद मिर्ज़ाखां की मां और चाचा को भी इस बात का पता लग गया कि दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं। उन्होंने सोचा कि अगर मिर्ज़ा की शादी किसी दूसरी लड़की से कर दी जाए तो मामला टल जाएगा। उन्होंने अपनी बिरादरी की कई लड़कियां उसे दिखाईं। पर उसके दिल में तो साहिबां घर कर चुकी थी, इसलिए वह दूसरी लड़की की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता था।

उधर झंग में भी मिर्ज़ा और साहिबां के प्रेम की चर्चा होने लगी थी। चोरी-छिपे उनके आपस में मिलने की बात भी सबको मालूम हो चुकी थी। जिन मुल्लाजी के पास साहिबां पढ़ती थी, वे उसे बदनाम करने में सबसे आगे थे। उन्होंने अताखां को पत्र लिखा कि साहिबां की अवस्था शादी करने योग्य हो गई है। इसलिए जैसे भी हो जल्दी से जल्दी उसे ब्याह ले जाओ। नहीं तो मुझे डर है कि वह कुछ और न कर बैठे। खेवाखां ने भी चन्दन कबीले के सरदार को पत्र लिखा कि बेटी जवान हो गई है और मैं चाहता हूं कि अब उसकी शादी कर दी जाए। इसलिए आप दिन मुकर्रर करके बरात लेकर आइए और ब्याह ले जाइए।

शादी का दिन मुकर्रर हो गया। दोनों ओर तैयारियां होने लगीं। दूल्हा और बरात पूरी सजधज के साथ चले। बाजों के शोर के कारण कुछ सुनाई नहीं देता था। दूल्हे के साथ आगे-पीछे, दाएं-बाएं चन्दन कबीले के सैंकड़ों नौजवान घोड़ों पर सवार, हाथों में भाले लिए, कंधे में धनुष लटकाए और पीठ पर तूणीर बांधे शान से झूमते चल रहे थे। झंग-स्याल में भी बड़े जोर से बरात के स्वागत और खान-पान की तैयारियां हो रही थीं। साहिबां दुल्हन के सोलह शृंगार किए अलग कमरे में सखियों से घिरी बैठी थी ढोलक बज रही थी और गीत गाए जा रहे थे। मिर्ज़ाखां को पता लग गया था कि उसकी आशाओं पर पानी फिरने वाला है। वह पूरी तरह हथियारबन्द होकर चुपचाप झंग-स्याल की ओर चल पड़ा और बरात के पहुंचते ही वह भी पहुंच गया।

झंग-स्याल में एक बुढ़िया रहती थी। अच्छे-अच्छे घरों में उसका आना-जाना था। पहले एक बार इस बुढ़िया ने मिर्ज़ाखां की भेंट साहिबां से करवाई थी। अब इस आड़े वक्त उसे फिर इस बुढ़िया की याद आई और वह उसीके घर की ओर चल दिया। उसने बुढ़िया मां से कहा—यह लो अपना इनाम और जिस किसी तरह भी हो, साहिबां से मेरी भेंट का बन्दोबस्त करो। बुढ़िया रुपयों की थैली देखकर दंग

रह गई थी। ज़रा-सा काम और इतना बड़ा इनाम ! बुढ़िया की सारी उमर इन्हीं कामों में गुज़र गई थी। उसने झट से तरकीब सोच निकाली।

बुढ़िया ने कहा—साहिबां से मिलने का केवल एक ही तरीका है कि तुम लड़की का भेस बना लो और मैं तुम्हें उसकी सहेली बताकर, उससे मिला दूंगी। दूसरा कोई तरीका नहीं है। क्योंकि उसपर पहरा बिठा दिया गया है।

मिर्ज़ाखां ने लड़की का भेस बनाया और बुढ़िया के साथ हो लिया। ड्योढ़ी पर दरबान ने रोका। पर बुढ़िया ने कहा कि यह तो साहिबां की एक सहेली है। और उससे मिलना चाहती है।

साहिबां को जब बताया गया कि उसकी एक बचपन की सहेली मिलने आई है तो वह कुछ हैरान हुई पर जब सहेली ने चेहरे पर पड़ी चादर हटाई तो वह झट पहचान गई। साहिबां मिर्ज़ाखां को देखकर, खुश भी हुई और घबराई भी। खुश तो इसलिए हुई कि उसका प्रेमी उसके पास है और घबराई इसलिए कि अगर किसीको पता लग गया तो मिर्ज़ाखां का यहां से जीवित बच निकलना कठिन होगा। वह कहने लगी—तुम इस समय यहां क्यों चले आए, अगर किसीको मालूम हो गया तो तुम्हारी खैर नहीं।

मिर्ज़ाखां ने कहा—मैं तुम्हें लेने आया हूं। चलने की

तैयारी करो।

साहिबां सहेलियों से घिरी हुई थी और वहां से खिसक-कर भाग निकलना बहुत कठिन था। पर बुढ़िया की मदद से मिर्जाखां ने इसका इन्तजाम भी कर लिया। शर्बत, में एक नशीली चीज मिलाकर, उन सब को पिला दी; जिस से वे सब सो गईं। मिर्जाखां साहिबां को लेकर पिछवाड़े के दरवाजे से बाहर निकल गया। बाहर पहले से ही घोड़ा तैयार खड़ा था। दोनों घोड़े पर सवार होकर भाग निकले। मिर्जा के मन में आई कि अताखां के सामने जाकर कहूं—मैं मिर्जाखां अपनी साहिबां को लिये जा रहा हूं। हिम्मत हो तो रोक लो। पर साहिबां ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। उसने कहा—खामखाह झमेला मोल लेने से क्या फायदा!

मिर्जाखां और साहिबां ने एक बड़ी चादर ओढ़ रखी थी, ताकि यह मालूम न हो कि घोड़ी पर दो जने बैठे हैं। लेकिन जब वे झंग शहर से बाहर पहुंचे तो एक ब्राह्मण ने उन्हें देख लिया। उसे घोड़ी की पीठ पर दो सवारों के बैठे होने का कुछ सन्देह हुआ। फिर उसने गौर से देखा तो उसे याद हो आया कि यह घोड़ी तो मिर्जाखां की है। और फिर उनकी प्रेम-कहानी, साहिबां के ब्याह की बात उसके दिमाग में आई। वह सोचने लगा—हो न हो, मिर्जा-

खां साहिबां को भगाकर ले जा रहा हो। यह विचार मन में आते ही वह खेवाखां के पास पहुंचा। कहने लगा—जरा भीतर जाकर साहिबां की खबर तो लो।

खेवाखां ने पूछा—क्यों क्या बात है ?

ब्राह्मण ने कहा—भले आदमी, पहले जाकर यह तो देखो कि वह घर में है भी या नहीं ? मैंने शहर से बाहर एक घोड़ी पर दो सवारों को बैठे देखा है और वह घोड़ी मिर्ज़ाखां की थी।

खेवाखां ने सुना तो पांवों के नीचे की ज़मीन सरक गई। वह भागा-भागा अन्दर गया। साहिबां की सहेलियां बेहोशी की नींद सोई पड़ी थीं। हिला-डुलाकर जब उन्हें जगाया और साहिबां के बारे में पूछा तो कहने लगीं कि साहिबां की कोई बचपन की सहेली आई थी। उसने हम सभी को शर्बत पिलवाया। बस, हमें नींद आ गई। फिर क्या हुआ, हमें कुछ मालूम नहीं।

खेवाखां ने दूल्हे वालों को बताया। लड़का-लड़की दोनों ओर के लोग मिर्ज़ाखां का पीछा करने के लिए निकल खड़े हुए।

झंग से कोई पांच कोस के फासले पर एक खानकाह थी। झंग जाते समय मिर्ज़ाखां ने वहां मिन्नत मानी थी कि अगर मुझे साहिबां मिल गई तो मैं वापसी पर यहां

फातह पढ़ूगा। जब रास्ते में यह खानकाह आई तो वह घोड़ी से उतर पड़ा और फातह पढ़ने लगा। इसके बाद वह कुछ सुस्ताने के लिए लेट गया। साहिबां ने उसे उठाना चाहा पर थकावट के कारण उसे झपकी लग गई। थोड़ी देर तो साहिबां उसके सिर को गोद में रखकर बैठी रही। फिर कहने लगी—अब उठो भी, वे लोग कहीं हमारा पीछा न कर रहे हों।

मिर्जाखां ने आंखें मूंदे-मूंदे ही उत्तर दिया—कोई डर नहीं, मेरा तरकश तीरों से भरा हुआ है और मेरा निशाना अचूक होता है। यह घोड़ी हवा से बातें करती है। वे आ भी जायें तो हमें पकड़ नहीं सकते। और यह कहकर फिर सो गया।

मिर्जाखां सो रहा था और साहिबां जाग रही थी। उसने मन में सोचा—अगर वे लोग हमारा पीछा कर रहे होंगे तो मेरे भाई उनमें सबसे आगे होंगे। और अगर मुठभेड़ हो गई तो मिर्जाखां का मुकाबला सीधा मेरे भाइयों से होगा। मिर्जा के तीर सीधे उन्हें निशाना बनाएंगे। यह सोचकर उसने मिर्जाखां के तरकश के सारे तीर निकाल कर बाहर फेंक दिए। केवल एक तीर रहने दिया।

साहिबां को कुछ दूर आते घोड़ों की टापें सुनाई दीं। ऐसा लगा कि क्षण भर में घोड़े उनके पास पहुंच जाएंगे।

उसने सिर पर आए खतरे से झुंझलाकर मिर्ज़ा को झिंझोड़कर जगाया और कहने लगी—क्यों, सोते ही रहोगे। पीछा करने वाले सिर पर आ पहुंचे हैं।

मिर्ज़ाखां आंखें मलता उठ खड़ा हुआ। तरकश पीठ पर डाला और दोनों घोड़ी पर सवार हुए और उसे ऐड़ लगाई। घोड़ी सरपट भाग चली।

साहिबां का बाप पीछा करने वालों में सबसे आगे था। उसने देखा कि यह तो पकड़ से बाहर निकल जाएगा तो उसने ज़ोर से पुकारकर कहा—यों नामर्दों की तरह क्यों भाग रहे हो? हिम्मत हो तो मुकाबला करो।

मिर्ज़ाखां यह सुनकर रुक गया। उसने तीर निकालने के लिए तरकश पर हाथ डाला। पर यह क्या! तरकश तो खाली पड़ा था। वह समझ गया कि साहिबां ने ही यह किया होगा पर फिर भी उसने हिम्मत न हारी। उसने साहिबां को घोड़ी से उतारकर वृक्ष की आड़ में बिठा दिया और तरकश में बचे एकमात्र तीर को निकालकर, डोरी को कानों तक खींचकर ऐसा निशाना मारा कि साहिबां के दोनों भाइयों के सीने छिद गए। उनकी मौत से दुश्मन आग-बबूला होकर उसपर टूट पड़े। पर मिर्ज़ाखां भी एक ही बहादुर था। उसकी तलवार बिजली की तरह कड़कती दुश्मनों के सीनों में निकल जाती। जो भी उसके सामने

आता, अपनी जान से हाथ धो बैठता। वह एक साथ भाला और तलवार चलाता। वह अकेला शेर हाथियों के इस झुंड से जूझ रहा था। उसमें कमाल की फुर्ती थी। उसे नीचा दिखाने के लिए खेवाखां उसके सामने आया। और कहने लगा—मिर्ज़ाखां, इस मार-काट से क्या फायदा। छोड़ो इस लड़ाई को, आओ, सुलह कर लें।

इस तरह उसे बातों में उलझा लिया और उधर अताखां को इशारा कर दिया। वह कायर अपने घोड़े को घुमाकर मिर्ज़ाखां की पीठ की तरफ ले गया। और पीछे से उसके सिर पर भाले से ऐसा वार किया कि मिर्ज़ाखां के गहरी चोट लगी। वह मुड़कर अताखां पर वार करना चाहता था किन्तु खेवाखां ने कहा—बेटा, अताखां से ग़लती हुई। तुम इसका ख्याल मत करो। मैं अपनी छोटी बेटी का ब्याह उससे कर दूंगा और साहिबां का तुम से। आओ, हाथ मिलाओ। हम सुलह करके एक-दूसरे के दोस्त बन जाएं।

मिर्ज़ाखां हाथ मिलाने आगे बढ़ा तो खेवाखां ने पूरे ज़ोर से खंजर उसकी छाती में भोंक दिया। एक बहादुर को धोखेबाज़ों ने अपने जाल में फंसाकर मार डाला।

मिर्ज़ाखां की लाश को वहीं छोड़कर, खेवाखां ने साहिबां को अपने घोड़े पर बिठाया और वापस घर की

तरफ मुड़ चला। जिस खंजर से उसने मिर्ज़ाखां को मारा था वह उसने अपनी कमर में खोंस रखा था। साहिबां ने मौका पाकर उसे निकाल लिया और अपने पेट में दे मारा।

जहां मिर्ज़ाखां की लाश पड़ी थी, उसीके आगे खरल कबीले का इलाका था। इसलिए इब्राहीमखां को मिर्ज़ाखां के मारे जाने का पता जल्दी ही लग गया। वह अपनी फौज लेकर धावा बोलने चल पड़ा। स्याल और चन्दन कबीले के लोगों को उससे मुकाबला करने की कहां हिम्मत थी! खरल कबीले के बहादुरों ने झंग शहर की ईंट से ईंट बजा दी और उसे तहस-नहस कर दिया। फिर खेवाखां को पकड़ कर ले गए।

मिर्ज़ाखां और साहिबां की लाशें उठाई गईं। उन्हें बड़े सम्मान के साथ खरलों ने अपने इलाके में दफना दिया।

बाद में इब्राहीमखां ने खेवाखां को छोड़ दिया। और झंग का सरदार बना दिया।

प्रेम के लिए मरकर मिर्ज़ाखां और साहिबां ने प्रेम-कथाओं में अपनी अमर-कथा जोड़ दी।

●